॥ श्रीः ॥

गिरिधररायकृत-

कुण्डलिया।

जिसमें

ज्ञान, विज्ञान, नीति, वैराग्य आदि उपदेश
रोचक कुण्डलियोंमें वर्णित हैं.

इसीको

निर्मल पं० स्वामी गोविन्दसिंहजी साधुसे शुद्ध
कराय

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासने
अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९८१, शके १८४६.

कल्याण-मुंबई.

प्रस्तावना ।

इस ईश्वरीय सृष्टिमें प्रायः यावत् प्राणिवर्ग ऐसाही देखनेमें आता है, जो कि अपनी मातृभाषासे स्पष्ट वाग्व्यवहार करता हुआ परस्पर एक दूसरेके तात्पर्यके बोधनमें समर्थ होता है। उसमें भी इस पुरुषवर्गमें कहीं २ ऐसी चमत्कृति देखनेमें आती है कि समय २ पर यह ऐसा उचित तथा पक्षपातरहित न्यायगर्भित बोलता है, जो कि आबालवृद्ध राजासे लेकर रंकतक उसको सभी धर्मशास्त्रनावत् या राजशासनावत् बुद्धिपूर्वक स्वीकार करते हैं। उदाहरणके लिये जैसे इस गत १८ शताब्दीमें होनेवाला (गिरिधर) उपनामक हरिदाससंज्ञक उदासीन साधु हुआ है वैसा समयानुरूप सर्वमान्य उचित वक्ता शीघ्र होना कठिन है. यह कोई किसी शास्त्रका विद्वान् या अनेक ग्रन्थोंका रचयिता प्रख्यात कवि न था किन्तु एक साधारण प्रकृतिका अनुभवी तथा शान्त विरक्त साधु महात्मा था मातृभूमि इसकी पञ्जाब तथा साधु वेषसे विचरना इसका प्रायः गंगाजीके तीरपर हुआ करता था यह विरक्त होनेसे अपनी रचनाके लिखने पढनेका बखेडा नहीं करता था किन्तु समय समयपर अपने भावको शीघ्र कविकी तरह कुण्डलियां छंदमें कहा करता था कभी २ कोई समीपवर्ती महात्मा उसको रोचक जानकर सर्वोपकारार्थ लिख लेता तो एकसे दूसरा उससे फिर दूसरा ऐसेही वह वचन डाकपत्रकी तरह प्रचार पाता था ऐसेही कतिपय वचन इसके सर्वदेश साधारण तथा

सर्वमान्य जानकर मैंने इनके प्रकाश करनेके अभिप्रायसे अनेक साधु महात्माओंके आगे इनके संग्रहकी प्रार्थना की परन्तु ऐसे निरपेक्ष महानुभावका पवित्र लेख एक स्थानमें संगृहीत बिना प्रयत्नसे मिलै कहां ? मिले भी तो दश बीस या सौ पचास वचन मिले उनका मैं क्या प्रकाश करूं ऐसे विचारहीमें था कि मान्यवर श्रीमान् श्रीस्वामी आत्माराम उदासीनजी देशाटन करतेहुए बम्बई नगरमें पधारे तो मैंने अपना हार्द इनके आगे निवेदन किया तो उन्होंने कृपा कर मुझको यह उत्तम संग्रह प्रकाशकरणार्थ प्रदान किया इस लिये मैं उनको कोटिशः धन्यवाद देता हूँ तथा ऐसेही और महात्माओंके भी उत्तम संग्रहकी प्रार्थना करता हूं कि मैंभी महात्माओंके वचनोंको प्रकाशकर पुण्य विशेषका भागी बनूं—इति शम् ।

आपका कृपाकांक्षी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

॥ श्रीः ॥

अथ गिरिधररायकृत-

कुण्डलिया प्रारम्भ।

प्रथम भाग १.

दोहा-एकरदन करिवर वदन, सुमति सदन गणराज।
मूषकवाहन नाय शिर, पूजत आपन काज॥

कुण्डलिया।

जय जय श्री वेङ्कटरमण, शेषाचल महराज।
अष्ट सिद्धि नव निद्धिदा, भक्तन सारन काज॥
भक्तन सारन काज करो दाया अपनी विभु।
जन उपकारी काज आय श्री खेमराज प्रभु॥
गिरिधरकृत कुण्डली ख्यात तुम्हरे पद नयनय।
चंचल चतुर सुजान काज तुव पदकरिजयजय॥१॥
जियबो मरिबो ये उभै, नहिं हैं अपने हाथ।
जानत हैं वे नन्दसुत, विहरत बछरन साथ॥

विहरत बछरन साथ चारि युगके रखवारे ।
इन्द्रमान जिन हरयो विपतिके काटन हारे ॥
कह गिरिधर कविराय ज्वाब शाहनसे करिबो ।
आछत सीताराम उमिरि अपनी भरि जीबो ॥२ ॥
पुत्र प्राणते अधिक है, चारिउ युग परमान ।
सो दशरथ नृप परिहरेउ, वचन न दीन्ह्यो जान ॥
वचन न दीन्ह्यों जान बडेनकी बूझि बडाई ।
बात रहै सो काज और बरु सरवस जाई ॥
कह गिरिधर कविराय भये नृप दशरथ ऐसे ।
पुत्र प्राण परिहरे वचन परिहरे न ऐसे ॥ ३ ॥
साईं बेटा बापके, बिगरे भया अकाज ।
हरणाकश्यप कंसको, गयउ दुहुनको राज ॥
गयउ दुहुनको राज बाप बेटामें बिगरी ।
दुश्मन दावागीर हँसैं बहु मण्डल नगरी ॥
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई ।
पिता पुत्रके बैर नफा कहु कौने पाई ॥ ४ ॥

बेटा बिगरो बापसों, करि तिरियनको नेहु ।
लटापटी होने लगी, मोहिं जुदा करि देहु ॥
मोहिं जुदा करि देहु घरीमा माया मेरी ।
लेहौं घर अरु द्वार करो मैं फजिहत तेरी ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो गदहाके लेटा ।
समय परचो है आय बापसे झगरत बेटा ॥ ५ ॥
रही न रानी कैकयी, अमर भई यह बात ।
कवन पूर्बले पापते, बन पठयो जगतात ॥
बन पठयो जगतात कन्त सुरलोक सिधारेउ ।
जेहि सुत काजे मरेउ राउ नहिं वदन निहारेउ ॥
कह गिरिधर कविराय भई यह अकथ कहानी ।
यश अपयश रहिगयउ रहीनहिं कैकयिरानी ॥ ६ ॥
साई ऐसे पुत्रसे, बांझ रहे बरु नारि ।
बिगरी बेटे बापसे, जाय रहै ससुरारि ॥
जाय रहै ससुरारि नारिके नाम बिकाने ।
कुलके धर्म नशायँ और परिवार नशाने ॥

कह गिरिधर कविराय मातु झंखै वहि ठाईं ।
असिपुत्रिनि नहिं होय बांझ रहतिउँ बरुसाईं ॥७॥
नारी अतिबल होतहैं, अपनो कुलहि विनाश ।
कौरव पाण्डव वंशको, कियो द्रौपदी नाश ॥
कियो द्रौपदी नाश कैकयी दशरथ मारेउ ।
राम लषणसे पुत्र तेउ वनवास सिधारेउ ॥
कह गिरिधर कविराय सदा नर रहै दुखारी ।
सो घर सत्यनाश जहां है अतिबल नारी ॥ ८ ॥
मक्करवाली नारिको, मारा ना मिमिआइ ।
सरिता बोलै मोरसों, जियत भुवंगै खाइ ॥
जियत भुवंगै खाइ मुनिनके जिय तरसावै ।
कौतुक अपना करै कुँवरिके अंक लगावै ॥
कह गिरिधर कविराय जैसि खाँडेकी धारा ।
देखै हृदय विचारि नारि यह बडी मकारा ॥ ९ ॥
नारी परघर जाइ, अरे यह भला न मानै ।
जो घर रहै निदान, चाल भाषा पहिचानै ॥

भाषा चाल पिछानि बहुरि उतपात न होई ।
जो कुछ लागै दोष अरे सुन आवै रोई ॥
कह गिरिधर कविराय समय पर देतहैं गारी ।
मरा पुरुष जिय जान जब परघर गइ नारी ॥ १० ॥
काची रोटी कुचकुची, परती माछी बार ।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार ॥
परसत टपकै लार झपटि लरिका सौचावै ।
चूतर पोंछे हाथ दोउकर शिर खजुवावै ॥
कह गिरिधर कविराय फुहरके याही धैना ।
कजरौटा बरु होइ लुकाठन आंजै नैना ॥ ११ ॥
चिन्ता ज्वाल शरीरकी, दाह लगै न बुझाय ।
प्रकट धुवां नहिं देखिये, उर अन्तर धुँधुवाय ॥
उर अन्तर धुँधुवाय, जरै जस कांचकी भट्ठी ।
रक्त मांस जरि जाइ रहै पांजरिकी ठट्ठी ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे मिन्ता ।
वे नर कैसे जियैं जाहि व्यापी है चिन्ता ॥ १२ ॥

साईं पुर ज्वाला उठो, आसमानको धाय ।
अन्धहि पंगुहि छोडिकै, पुरजन चले पराय ॥
पुरजन चले पराय अन्ध इक मन्त्र विचारो ।
पंगुहि लीन्हे कन्ध डीठ वाके पगु धारो ॥
कह गिरिधर कविराय सुमति ऐसी चलिआई ।
विना सुमतिको रंक पंक रावण भे सांई ॥ १३ ॥
सुवा एक दाडिमके धोखे, गयो नारियलखान ।
कछुखायोकछुखानन पायो, फिर लागो पछितान ॥
फिर लागो पछितान बुद्धि अपनीको रोवा ।
निर्गुणियनके साथ बैठि अपने गुण खोवा ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो मेरे नोखे ।
गयो झटाका टूटि चोंच दाडिमके धोखे ॥ १४ ॥
सो०-शुकने कह्यो सँदेश, सेमरके पगलागिहौं ।
पगन परेवहि देश, जब सुधि आवै फलनकी ॥

कुण्डलिया ।

भूलो चातक आइकै, घटा धुवांको देखि ।

यह जानी जस जलजहै, बादर श्याम विशेखि ॥
बादर श्याम बिशेखि देखि ताकि ताको धायो ।
इक समय संकट परे कौन काके घर आयो ॥
कह गिरिधर कविराय धुवांको यह फल पायो ।
जों जलका गयो सोइ नयनन जल आयो ॥ १५ ॥
साई बेर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार ।
बेटा वनिता पंवरिया, यज्ञ करावनहार ॥
यज्ञ करावनहार राजमन्त्री जो होई ।
विप्र परोसी वैद्य आपको तपै रसोई ॥
कह गिरिधर कविराय युगनते यह चलि आई ।
इन तेरहसों तरह दिये बनि आवै साई ॥ १६ ॥
बैरी बँधुवा बानियां, ज्वारी चोर लबार ।
बटपारी रोगी ऋणी, नगर नारिको यार ॥
नगर नारिको यार भूलि परतीत न कीजै ।
सौ सोगन्दें खाय चित्तमें एक न दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय घरै आवै अनगैरी ।

मुंहसे कहै बनाय चित्तमें पूरो वैरी ॥ १७ ॥
बनियां अपने बापको, ठगत न लावै बार ।
निशिवासर जननी ठगै, जहां लेत अवतार ॥
जहां लेत अवतार मास दश उदरमें राखै ।
गुरुसे करै विवाद आप पंडित ह्वै भाखै ॥
कह गिरिधर कविराय व्यचे हरदी औ धनियां ।
मित्र जानि ठगिलेहि जहांलग भक्ता बनियां॥ १८॥
आटामें आटा घटे घटै दारमें दार ।
कबहुँके घटि है घीवमहं, तो हमसे ह्वै है रार ॥
हमसे ह्वै है रार मारि जूतन जी लेहौं ।
जानै सकल जहान दाम एकौना देहौं ॥
कह गिरिधर कविराय बैठिहौं तुम्हरे घाटा ।
तनहिन मूड ठठैहौं जो कहुं घटिहै आटा ॥ १९॥
झूंठे मीठे वचन कहि, ऋण उधार लेजाय ।
लेत परम सुख ऊपजै, लैके दियो न जाय ॥
लैके दियो जाय ऊंच अरु नीच बतावै ।

ऋण उधारकै रीति मांगते मारन धावै ॥
कह गिरिधर कविराय जानि रहै मनमें रूठा ।
बहुत दिना ह्वैजाय कहै तेरो कागज झूठा ॥ २० ॥
सोना लादन पिव गये, सूना करि गये देश ।
सोना मिले न पिव मिले, रूपा ह्वैगे केश ॥
रूपा ह्वैगे केश रोय रंग रूप गंवावा ।
सेजनको विश्राम पिया बिन कबहु न पावा ॥
कह गिरिधर कविराय लोन विन सबै अलोना ।
बहुरि पियाघर आव कहा करिहो लै सोना ॥ २१ ॥
मोती लादन पिव गये, धुर पटना गुजरात ।
मोती मिले न पिव मिले, युग भरि बीती रात ॥
युगभरि बीती रात विरहिनी आनि सतावै ।
चौकि परी ब्रजनारि पियाको लिखा न आवै ॥
कह गिरिधर कविराय गोपिका यह कह रोती ।
आगि लगे वह देश जहां उपजतहै मोती ॥ २२ ॥
जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै संग ।

जो चाहै लेतो बनै, तो करिडारु निपंग ॥
तो करिडारु निपंग भूलि परतीत न कीजै ।
सौ सौगन्दैं खाय चित्तमें एक न दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय कबहुं विश्वास न वाको ।
शत्रु समान परिहरिय हरिय धनधरती जाको ॥ २३ ॥
साईं सत्य न जानिये, खेलि शत्रु संग सार ।
दांपरे नहिं चूकिये, तुरत डारिये मार ॥
तुरत डारिये मार नरद कच्ची करि दीजै ।
कच्ची होय तो होय मारि जगमें यश लीजै ॥
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई ।
कितनो मिलै सहाय शत्रुको मारिय साईं ॥ २४ ॥
नदी न छोडिय तीरसों, जो वरषा सरसाइ ।
बाढि बाढि दिनचारिको, अपयश जन्म नशाइ ॥
अपयश जन्म नशाइ वही पाहनकी रेखा ।
बडी बडाई लहत सदा हम कबहुँ न देखा ॥
कह गिरिधर कविराय नेक नेकी नहिं तोडा ।

बदी किये का होय नदीको तीर न छोडा ॥२५॥
दौलत पाय न कीजिये, सपनेमें अभिमान ।
चञ्चल जल दिन चारको, ठाउँ न रहत निदान ॥
ठाउँ न रहत निदान जियत जगमें यश लीजै ।
मीठे वचन सुनाय विनय सबहीकी कीजै ॥
कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घटतौलत ।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सबहीके दौलत ॥२६॥
गुणके गाहक सहसनर, बिनु गुण लहै न कोय ।
जैसे कांगा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ॥
शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन ।
दोऊको यह रंग काग सँग भये अपावन ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मनके ।
बिनु गुणलहै न कोय सहस नर गाहक गुणके२७॥
मित्र बिछोहा अति कठिन, मति दीजै करतार ।
वाके गुण जब चित चढैं, वर्षत नयन अपार ॥
वर्षत नयन अपार, मेघ सावन झरिलाई ।

अब बिछुरे कब मिलो कहो कैसी बनिआई ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो विनती एहा ।
हे करतार दयालु देहु जनि मित्र बिछोहा ॥२८॥
साईं तहां न जाइये, जहां न आप शोधाय ।
बरण विषै जानै नहीं, गदहा दाखें खाय ॥
गदहा दाखें खाय गऊपर दृष्टि लगावै ।
सभा बैठि मुसक्याय यही सब नृपको भावै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो रे मेरे भाई ।
तहां न करिये वास तुर्त उठि आइय साईं ॥ २९ ॥
गया पिंड जो देइ, पितरको अपने तारै ।
करज बापकर देइ, लटे परिवार सँभारै ॥
हरी भूमि गहि लेइ द्रवन शिर खड्ग बजावै ।
पर उपकारज करै पुरुषमें शोभा पावै ॥
सोई वंश सराहिये तल बैरी सब दलमलै ।
इतनो काम जो ना करै तौ पुत्रसेह कन्याभलै३०॥
सिंहिनी सिखवत सिंहकहँ, पिय बेडा परे सँभार ।

जेहि हाथे हाथी हन्यो, तेहि मेढक जनिमार ॥
तेहि मेढक जनिमार कुलहि जानि दोष लगावै ।
बरु फांका करि मरै जगतमें शोभा पावै ॥
कह गिरिधर कविराय हँसै जम्बुक औ दिंगिनि ।
समय परेकी बात सिंहको सिखवै सिंहिनि ॥ ३१ ॥
हिरना बिरझेउ सिंहसे, औझर खुरी चलाय ।
झारखण्ड झीना परचो, सिंहा चलो पराय ॥
सिंहा चलो पराय स समय समरत्थ विचारी ।
कालहि कालमालाइ हँसे हँसिकै पगधारी ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो मेरे अरना ।
आजु गई करि जाय सकारे मैं की हरना ॥ ३२ ॥
बगुला झपटचो बाजपर, बाज रह्यउ शिर नाय ।
दै अँधियारी पग्गु बँध्यो, चेटक दै फहराय ॥
चेटक दै फहराय धनी बिनु कौन चलावै ।
डरै सांकरी डार करै जो जो मन भावै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो पश्चिमके नकुला ।

समया पलटे आय बाजपर झपटत बगुला ॥ २३॥
फुद्की फुद्कत बाजपर, बाज रहत है लाज ।
बहुतदिननमें गमनकरि, त्वाहिं मारतहौं आज ॥
त्वाहिं मारतहौं आज बाज टरिजाउ यहांसे ।
जब मैं करिहौं कोप तबै तुम बचौ कहांसे ॥
कह गिरिधर कविराय बाजपर उलरइ धुधकी ।
समय परेकी बात बाज कहँ घिरवै फुद्की ॥२४॥
पाता बडबड देखिकै, चढे कमंठो धाय ।
तरुवर होय तो भारसह, टूटे रड अरराय ॥
टूटे रड अरराय जाय अन्तहि है फूली ।
बतिया गईं लुभाय कहा धौं मारग भूली ॥
कह गिरिधर कविराय यहै नीचनकी बाता ।
अब न जाउँ वहि ठाउँ देखिकै बडबड पाता ॥२५॥
साईं सब संसारमें, मतलबका व्यवहार ।
जबलग पैसा गांठमें, तबलग ताको यार ॥
तबलग ताको यार संगही संगमें डोलै ।

पैसा रहा न पास यार मुखसे नहिं बोलैं ॥
कह गिरिधर कविराय जगत यहि लेखा भाई ।
बिनु बेगरजी प्रीति यार बिरला कोइ सांई ॥ ३६ ॥
दादुरकेर दरेरपर, लै फणपति निज शीश ।
समय आपनो जानिकै, मनहिं न लायो ईश ॥
मनहिं न लायो ईश शीश पर बोल्यो भाई ।
परचो आपदा आय लाजपति सबै गँवाई ॥
कह गिरिधर कविराय कहां लै आनी आदर ।
गुणकी मति घटिगई शीशपर बोले दादुर ॥ ३७ ॥
केचुवा नागिनिसे कहै सुनो न हेतु अचार ।
हम तुमसे अस रीति है, लाख भांति व्यवहार ॥
लाख भांति व्यवहार व्याह सावनमें कीजै ।
का चैतको घाम कटक दल हमरो छीजै ॥
कह गिरिधर कविराय कहांसे आये हेतुवा ।
शेषनाग मरिजाय नागिनिहिं व्याहै केचुवा ॥ ३८ ॥
कोइ भँवर गुलाब तजि, गये जो हुरहुर पास ।

धारक समान अबार है, करकस आई बास ॥
करकस आई बास आक पासहुसे भागे ।
अपने मन पछिताय फेर वाही सँग लागे ॥
कह गिरिधर कविराय कुमाति, अस फजिहत होई ।
जोइ बडेनकी छोडि नींच घर आवै सोई ॥ ३९ ॥
भँवर भटैया चाह जनि, कांट बहुत रस थोर ।
आशन पूजे बासरा, तासों प्रीति न जोर ॥
तासों प्रीति न जोर तोर कुल कमल सँघाती ।
पपिहा रटे पियास बुन्दजल आवै स्वाती ॥
कह गिरिधर कविराय बैठु परमलकी छैया ।
बरु मरु जियतरसाहै जाहु जनि भँवर भटैया४०॥
दोहा-भौंरा वहदिन कठिन है, दुखसुख सहै शरीर ।
जब लग फूलै केतकी, तब लग बैठु करीर ॥

कुण्डलिया ।

हीरा अपनी खानिको, वारवार पछिताय ।
गुणकीमत जानै नहीं, तहां बिकानो आय ॥

तहां बिकानो आय छेदकारि कटिमें बांध्यो ।
बिन हरदी बिन लोन मांस ज्यों फूहर रांध्यो ॥
कह गिरिधर कविराय कहां लखि धरिये धीरा ।
गुण कीमत घटिगई यहै कहि रोयो हीरा ॥ ४१ ॥
रहिये लटपट काटि दिन, बरु घाममा सोय ।
छाह न वाकी बैठिये जो तरु पतरो होय ॥
जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा देहै ।
जो दिन बहै बयारी टूटि तब जरसे जैहै ॥
कह गिरिधर कविराय छांह मोटेकी गहिये ।
पत्ता सब झरिजाय तऊ छाहेमा रहिये ॥ ४२ ॥
पीवे नीर न सरवरो, बूंद स्वातिकी आश ।
केहरी तृण नाहिं चरि सकै, जो व्रत करै पचाश ॥
जो व्रत करै पचाश विपुल गज युत्थ बिदारै ।
सुपुरुष तजै न धीर जीव बरु कोऊ मारै ॥
कह गिरिधर कविराय जोव जोधक भरि जीवै ।
चातक बरु मरिजाय नीर सरवर नाहिं पीवै ॥४३ ॥

हंसा हियँ रहिये नहीं; सरवर गये सुखाय ।
कालिह हमारी पीठपै, बगला धरि है पांय ॥
बगुला धरिहै पांय इहां आदर नहिं हैहै ।
जगत हँसाई होय बहुरि मनमें पछतैहै ॥
कह गिरिधर कविराय दिनै दिन बाढै संसा ।
याहूसे घटि जाय तबैका करिहै हंसा ॥ ४४ ॥
हंसा उडि दिशि कह चले, सरवर मीत जुहार ।
हम तुम कबहूँ भेंटि हैं, सन्देशन व्यवहार ॥
सन्देशन व्यवहार सदा जल पूरण रहियो ।
सुख सम्पति धनराज्य सदा चिर जीवित रहियो ॥
कह गिरिधर कविराय कीरकी रही न मंसा ।
दै अशीश उडि चले देश अपनेको हंसा ॥ ४५ ॥
सैयां भये तिलँगवा, बौहर चली नहाय ।
देखिडरी कमान कहँ कौन जनारो आय ॥
कौन जनारो आय काह देहुँ पहिरे बाटे ।
बिन गुनाह तकसीर सैयांको ठाढे डाटे ॥

कह गिरिधर कविराय नचै जस बन्दर भल्ला ।
तोसदान बन्दूक हाथमें पत्थर कल्ला ॥४६॥
साईं जगमें योग करि, मुक्ति न जानै कोय ।
जब नारी गवने चली, चढी पालकी रोय ॥
चढी पालकी रोय जान नहिं कोई जीकी ।
रही सुरति तन छाय सुछतिया अपने हियकी ॥
कह गिरिधर कविराय अरे जनि होहु अनारी ।
मुँहसे कहै बनाय पेटमें विगरै नारी ॥ ४७ ॥
दोहा-नवलनारि रोवै नहीं, कहै पुकारि पुकारि ।
जस पिया तुम हम सन करी, वैसे करब प्रचारि ॥

कुण्डलिया ।

गढपतियनको धर्म है, करै उन्हींको ध्यान ।
जिमींदोज रैनी करै, मनका राखो जान ॥
मनका राखो जान किलेपर तोप चढावो ।
कोश कोशको गिरदः काटि मैदान करावो ॥
कह गिरिधर कविराय राज राजनके साईं ।

अस गढपति जो होइ ताहिको जंग नशाई ॥४८॥
नारा कहै नदीन सन, हम तुम एक समान।
कछु हम तुम सन अधिक हैं, अधिकहमारो मान ॥
अधिक हमारो मान ताहि तब बरषा आये।
बरसे नीर झराझर मनाइ उबार न पाये ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो भाई पारा।
समय परेकी बात नदी कहँ सिखवै नारा ॥४९॥
चुगुल न चूकै कबहुँको, अरु चूकै सब कोइ।
बरकन्दाज कमानियां, चूक उनहुँसे होइ ॥
चूक उनहुँसे होय जे बांधै बरछी गुल्ला।
चूक उनहुसे होय पढें पंडित औ मुल्ला ॥
कह गिरिधर कविराय कालहू ते नट चूकै।
चुगुल चौकसीदार ससुर कबहूँ नहिं चूकै ॥५०॥
मूसा कहै बिलारसों, सुन रे जूठ झूठैल।
हम निकसत हैं सैरको, तुम बैठत हो गैल ॥
तुम बैठत हो गैल कचारि धक्कनसों जैहो।

तुमहौ निपट गरीब कहा घर बैठे खैहौ ॥
कह गिरिधर कविराय बात सुनिये हो हूसा ।
बाउ दिननका फेर बिलारि हि सिखवै मूसा॥८१॥
कौवा कहै मरालसे, कहा जाति कह गोत ।
तुम ऐसे बदरूपिया, कहूँ न जगमें होत ॥
कहूँ न जगमें होत महा मैले मलखाना ।
बैठि कचहरी जाय वेद मर्याद न जाना ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो पछी हौवा ।
धन्य मुल्क यह देश जहांके राजा कौवा ॥८२॥
मकरी गिरगिटसे कहै, का मारतिहौ सान ॥
जो तुम्हारे हिरदै न महँ, सो हमहूँ अब जान ।
सो हमहूँ अब जान करब हम घनके जाला ॥
जहां न तुम्हरी डीठि तहां अब हमरी जाला ।
कह गिरिधर कविराय बात सुनिये हो धाकर ।
लगे चपेटा मोर तहां नाहिं तहँवा माकर॥८३॥
नयना लगन अपार है, पट अटपट ह्वै जाय ।

गुण गरुवातम शीलता, धीरज धर्म नशाय ॥
धीरज धर्म नशाय फेर वाही सँग छूटै ।
छिनक बुद्धि होजाय फेर वाही सँग जूटै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो मोरे भयना।
कठिन प्रीतिकी रीति जहां लागै दुइनयना९४॥
नयनाकी नोकैं बुरी, निकस जात जस तीर ।
हेरे घाव न पाइये, वेधा सकल शरीर ॥
वेधा सकल शरीर वैद करै वैदाई ।
करिहौ कोटि उपाय घाउ नहिं देत दिखाई ॥
कह गिरिधर कविराय विरहनी देत हैं चौकैं ।
समुझि बूझिकै चलो बुरी नयननकी नौकैं॥९५॥
प्रीति कीजिये बडेनसों, माया लावे पार ।
कायर कूप कुपूत है, बोरि देत मँझधार ॥
बोरि देत मँझधार भीतिकी कवन बडाई ।
पछिताने फिरि देहिं जगतमें अपयश पाई ॥
कह गिरिधर कविराय प्रीति सांची सिखिलीजे ।

व्यवहारो जो होय तऊ तन मन धन दीजै ॥५६॥
सांई घोडे आछतहि, गदहन आयो राज ।
कौआ लीजै हाथमें, दूरि कीजिये बाज ॥
दूरि कीजिये बाज राज पुनि ऐसो आयो ।
सिंह कीजिये कैद स्यार गजराज चढायो ॥
कह गिरिधर कविराय जहां यह बूझि बधाई ।
तहां न कीजै भोर सांझ उठि चलिये सांई ॥५७॥
सांई अवसरके पडे, कौन सहै दुख द्वन्द ।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द ॥
वै राजा हरिचन्द करैं मरघट रखवारी ।
फिरे तपस्वी वेष फिरे अर्जुन बलधारी ॥
कह गिरिधर कविराय तपै वह भीम रसोई ।
कौन करै घटि काम परे अवसरके सांई॥५८॥
कुसमे चले विदेश कहँ, काची लादि कुम्हार ।
वर्षाऋतु वैरन भई, बादर कीन्हों मार ॥
बादर कीन्हों मार इत उत कछु नाहिं सूझै ।

भरिगई ताल तलैयां नदी औ सिन्धु को बूझै ॥
कह गिरिधर कविराय चले पहुँचे दिन दशमा ।
चला करम लै बांधि चलैका अपनी वशमा॥५९॥

पपिहा त्वहिंका मारिहौ, छाड देहु मम गांव ।
अर्द्धरातको बोलते, लै लै पिउको नांव ॥
लै लै पिउको नांव ठांव हमरो नहिं भूलै ।
कठिन तुम्हारो बोल जाइ हिरदेमें शूलै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो निर्दय पपिहा ।
नेक रहन दे मोहि चोंच मूंदे रहु घटिहा ॥६०॥

करै कियारि कपूरकी, मृगमद बरहा बन्ध ।
सींचे केवरा गुलाबसे, लहसुन तजै न गन्ध ॥
लहसुन तजै न गन्ध रहे अगर संयूता ।
कबहुँ अहै गजराज कबहुँ सूकरके पूता ॥
कह गिरिधर कविराय वेद भाषे यह सारी ।
बीज बयो सो होय कहा करैं उत्तम क्यारी॥६१॥

लंकापति तुमसे गई, ज्यों वसन्त द्रुम पात ।

सुमति बिभीषण ज्यों दई, तब तुम मारी लात ॥
तब तुम मारी लात भाग तबहीं ते आयो ।
मिल्यो रामदल जाइ काज धौं केतिक सारचो ॥
कह गिरिधर कविराज राम जिय बाढी शंका ।
तपै विभीषण राज अरे पति छूटी लंका॥६२॥
बडे बडेनकी ऐसेही, बडेन बडाई होय ।
हनूमान जब गिरिधरेऊ, गिरिधर कहत न कोउ ॥
गिरिधर कहत न ताको किनका हरि धरेउ ।
गिरिधर गिरिधर होय कहत सबको दुख हरेउ ॥
कह गिरिधर कविराज सुनो हो ज्ञानी भाई ।
थोरेमें यश होय यशी पूरुषको साईं ॥६३॥
साईं इन्हैं न विरोधिये, छोटो बडो सब भाय ।
ऐसे भारी वृक्षको, कुलहरी देत गिराय ॥
कुलहरी देत गिराय मारके जमीं गिराई ।
टूक टूककै काटि समुद्रमें देत बहाई ॥
कह गिरिधर कविराय फूट जेहिके घर आई ।

हिरणाकश्यप कंस गये बलि रावण भाई॥६४॥
लाठीमें गुण बहुत हैं, सदा राखिये संग ।
गहिरी नदि नारा जहां, तहां बचावे अंग ॥
तहां बचावे अंग झपटि कुत्ता कहँ मारै ।
दुश्मन दावागीर होय तिनहूँको झारै ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो धूरके बाठी ।
सब हथियारन छांडि हाथ महँ लीजे लाठी६५॥
कमरी थोरे दामकी, आवै बहुतै काम ।
खासा मलमल बाफता, उनकर राखै मान ॥
उनकर राखै मान बुन्द जहँ आडे आवै ।
बकुचा बांधे मोट रातको झारि बिछावैं ॥
कह गिरिधर कविराय मिलती है थोरे दमरी ।
सब दिन राखै साथ बडी मर्यादा कमरी ॥६६॥
जुगुनू बोले सूर्यसों, हम बिन जग अँधियार ।
दिनके ठाकुर तुम भये, रातके हम कोतवार ॥
रातके हम कोतवार जुगुनू अस नाम हमारो ।

तुम अकाशमें रहौ हमारो पृथ्वी द्वारो ॥
कहै गिरिधर कविराय सुनो हो मनके मगनू ।
ऐंड ऐंड बतलाहि सूर्यके सन्मुख जुगुनू ॥६७॥

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय ।
काम बिगारै आपनो, जगमें होत हँसाय ॥
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै ।
खान पान सन्मान राग रँग मनहिं न भावै ॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे ।
खटकतहै जियमाहिं कियो जो बिना बिचारे ॥६८॥

बीती ताहि बिसारि दे, आगेकी सुधि लेइ ।
जो बनिआवै सहजमें, ताहीमें चित देइ ॥
ताहीमें चित देइ बात जोई बनि आवै ।
दुर्जन हँसै न कोइ चित्तमें खता न पावै ॥
कह गिरिधर कविराय यहै करु मन परतीती ।
आगेको सुख समुझि होइ बीती सो बीती ॥ ६९ ॥

साँई अपने चित्तकी, भूलि न कहिये कोई ।

तब लग मनमें राखिये, जब लग कारज होइ ॥
जब लग कारज होइ भूलि कबहूँ नहिं कहिये ।
दुरजन हँसै न कोय आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरनकी ताई ।
करतूती कहि देत आप कहिये नाहिं साई ॥ ७० ॥
साई अपने भ्रातको, कबहु न दीजै त्रास ।
पलक दूर नहिं कीजिये, सदा राखिये पास ॥
सदा राखिये पास त्रास कबहूँ नहिं दीजै ।
त्रास दियो लंकेश ताहिकी गति सुनि लीजै ॥
कह गिरिधर कविराय रामसों मिलिगो जाई ।
पाय विभीषण राज्य लंकपति बाज्यो सांई ॥ ७१ ॥
सांई नदी समुद्रको, मिली बडप्पन जानि ।
जाति नाश भयो मिलतही, मानमहतकीहानि ॥
मान महतकी हानि कहो अब कैसी कीजै ।
जल खारी ह्वै गयो ताहि कहो कैसे पीजै ॥
कह गिरिधर कविराय कच्छ औ मच्छ सकुचाई ।

बड़ी फजीहत होय तबै नदियनकी सांई ॥ ७२ ॥
सांई जन अरु दुष्टजन, इनको यही सुभाव ।
खाल खिचावैं आपनी, परबन्धनके दांव ॥
परबन्धनके दांव खाल अपनी खिचवावैं ।
मूड काटिकै फबै तऊ वह बाज न आवैं ॥
कह गिरिधर कविराय जरै आपनी कटाई ।
जलमें परि सरगये तऊ छांडी न खुटाई ॥ ७३ ॥
सांई समय न चूकिये, यथाशक्ति सन्मान ।
का जानै को आइहै, तेरी पौरि प्रमाण ॥
तेरी पौरि प्रमाण समय असमय तकि आवै ।
ताको तू मन खोलि अंक भरि हृदय लगावै ॥
कह गिरिधर कविराय समैयामें सुधि आई ।
शीतल जल फल फूल समय जानि चूको सांई ॥ ७४ ॥
सांई ऐसी हरि करी, बलिके द्वारे जाय ।
पहिले हाथ पसारिकै, बहुरि पसारे पांय ॥
बहुरि पसारे पांय मतो राजाने बतायो ।

भूमि सबै हरि लई बांधि पाताल पठायो ॥
कह गिरिधर कविराय राउ राजनके ताँई ।
छल बल करि प्रभु मिले ताहिको तृष्टै साँई ॥७५॥
साँई अगर उजारिमें, जरत महा पछिताय ।
गुण गाहक कोऊ नहीं, जाहि सुबास सुहाय ॥
जाहि सुबास सुहाय सून वन कोऊ नाहीं ।
कै गीदर कै हिरन सुतौ कछु जानत नाहीं ॥
कह गिरिधर कविराय बडा दुख यहै गुसाईं ।
अगर आककी राख भई मिली एकै सांई ॥ ७६ ॥
सांईं हंसन आवहीं, बिनु जल सरवर पास ।
निर्जल सरवर ते डरैं, पक्षी पथिक उदास ॥
पक्षी पथिक उदास छांह विश्राम न पावैं ।
जहां न प्रफुल्लित कमल भँवर तहँ भूलि न आवैं ॥
कह गिरिधर कविराय जहां यह बूझि बडाई ।
तहां न करिये सांझप्रातहीं च लिये सांईं ॥७७॥
नयना जब परबस भये, उत्तम गुण सब जायँ ।

वै फिरि फिरि चोरीकरै, येफिरि फिरि लपटायँ ॥
ये फिरि फिरि लपटाय नेत्र बहुरें भरि आवें ।
खान पान तनु त्याग रात दिनहीं दुख पावें ॥
कह गिरिधर कविराय सुनो तुम श्रवणानि वैना ।
लोग देहअकलंक परैं जब परवश नैना ॥ ७८ ॥
साईं सुमन पलाशपर, सुवा रह्यो जो आय ।
लाल कलीसी चोंचपर, मधुकर बैठो जाय ॥
मधुकर बैठो जाय सुवा ततकाल बचायो ।
कोटि कष्ट करि पांय मारि कहिछूटन पायो ॥
कह गिरिधर कविराय वेगि घर बजै बधाईं ।
दीजै विदा पलाश जियत घर जैये साईं ॥ ७९ ॥
सां तेली तिलनसों, कियो नेह निर्वाह ।
छानि फटक ऊजर करी, दई बडाई ताह ॥
दई बडाई ताह पञ्च महँ सिगरे जानी ।
दै कोल्हूंम पेरि करी येकत्तर घानी ॥
कह गिरिधर कविराय यही माया प्रभुताईं ।

माया सब ते भली मानु मत मेरो सांई ॥ ८० ॥
सांई सुवा प्रवीन अति, वाणी वदत विचित्त ।
रूपवन्त गुण आगरो, राम नामसों चित्त ॥
राम नामसों चित्त और देवन अनुराग्यो ।
जहां २ तुव गयो तहां तुव नीको लाग्यो ॥
कह गिरिधर कविराय सुवा चूक्यो चतुराई ।
वृथा कियो विश्वास सेय सेमरको सांई ॥ ८१ ॥
गदहा थोरे दिननमें, खूद खाइ इतरात ।
अफरान्यो मारन कह्यउ, ऐराकी को लात ॥
ऐराकीको लात देत शंका नहिं आनै ।
ऐराकी सँग रहै ताहि कोऊ नहिं जानै ॥
कह गिरिधर कविराय रहैगो तौलौं जबहा ।
ऐराकीको लात सहैगो कैसे गदहा ॥ ८२ ॥
महुआ नित उठिदाखसों, करत मसलहत आय ।
हम तुम रूखे एकसे, हूजत हैं रसराय ॥
हूजत हैं रसराय विलग जानि याको मान्यो ।

मधुरमिष्ट हम अधिककछुक जियसेज निजान्यो॥
कह गिरिधर कविराय कहत साहबसे रहुवा।
तुम नीचे फरु वेलि वृक्ष हम ऊँचे महुवा ॥ ८३ ॥
गुलतुरासों जायकै, वार्ता करत करील।
हम तुम सूखे एकसों, पूछ देखिये भील ॥
पूछ देखिये भील भेदजो जानै मेरो।
ताहूँ पूछ बलाय भेद जो जानै तेरो ॥
कह गिरिधर कविराय ना तेरी करिहौं हुर्रा।
अब जनि भूलि गुमान करो फिरहौं गुलतुर्रा॥८४॥
हुक्का बांधो फेंटमें, नैगाहि लीन्ही हाथ ।
चले राहमें जातहैं, लिये तमाखू साथ ॥
लिये तमाखू साथ गैलको धंधा भूल्यो।
गइ सब चिन्ता भूलि आगि देखत मन फूल्यो ॥
कह गिरिधर कविराय जो यमकर आया रुक्का।
जिय लैगया जो काल हाथमें रहिगा हुक्का॥८५ ॥
पगडी सूही बांधिकै, भयो सिपाही लोग।

घास बेंचिकै खात है, भयो गांवमें रोग ॥
भयो गांवमें रोग पूछ नीबरी देखावहु ।
मनमें बडे हो छैरु राग पनघट पर गावहु ॥
कह गिरिधर कविराय हीन तुमते है चूही ।
भये सिपाही आनि बांधिकै पगडी सूही ॥ ८६ ॥
पानी बाढोनावमें, घरमें बाढो दाम ।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम ॥
यही सयानो काम रामको सुमिरण कीजै ।
परस्वारथके काज शीश आगे धरि दीजै ॥
कह गिरिधर कविराय बडेनकी याही बानी ।
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी ॥८७ ॥
राजाके दरबारमें, जैये समया पाय ।
सांई तहां न बैठिये, जहँ कोउ देय उठाय ॥
जहँ कोउ देय उठाय बोलैं अनबोले रहिये ।
हँसिये ना हहराय बात पूछेते कहिये ॥
कह गिरिधर कविराय समयसों कीजै काजा ।

आति आतुर नहिं होय बहुरि अनखैहैं राजा ॥८८॥
कृतघन कबहुँन मानहीं, कोटि करै जो कोय ।
सर्वस आगे राखिये तऊ न अपनो होय ॥
तऊ न अपनो होय भलेकी भली न मानै ।
काम काढि चुप रहै फेरि तिहि नहिं पहिचानै ॥
कह गिरिधर कविराय रहत नितही निर्भय मन ।
मित्र शत्रु ना एक दामके लालच कृतघन ॥८९॥
नमो नरायण निरामय, कारज कारण रहत ।
संबन्ध संज्ञा जात पुनि, गुण क्रिया असहत ॥
गुण क्रिया असहत कल्पना सर्व अतीता ।
नेति नेति करके भई चकृत सुरती गीता ॥
कह गिरिधर कविराय न जामें सत रज तमो ।
निरावर्ण इक दाट आपकूं आपे नमो ॥ ९० ॥
गिरिधर सो जो गिरिधरं, प्रयत्न सून्य विन खेद ।
गिरिकारण सूक्ष्मस्थूल तनु, गिरिधरप्रत्येक वेद ॥
गिरिधर प्रत्येक वेद जोहै नितहीं प्रापत ।

विना श्रोत्रध्वनि सुनो वाकविन शब्द अलापत ॥
कह गिरिधर कविराय जासमें नहीं मित्र अर ।
सबको आपन आप आत्मा सों तू गिरिधर ॥९१॥
वानी मात्र जगत सब, चित्त वित रेक न रंच ॥
ज्यों मृद्सत्य घटमिथ्यया, त्यों कलपत परपंच ॥
त्यों कलपत परपंच तंतुमें जैसे शस्तर ॥
कनक माहिं आभरण लोहमें जैसे शस्तर ॥
कह गिरिधर कविराय द्वैतकी धूरि उडानी ॥
मनकी जहां न गम्य विषयकरिसकै न वानी ॥९२॥
वानी विषय न करिसकै, मनकी जहां न गम्य ।
सो परमेश्वर ब्रह्म है, ऐसो लियो मरम्य ॥
ऐसो लियो मरम्य अपनको आप निहारयो ।
मोह संशय विपरीति भ्रांतिको मूल उखारयो ॥
कह गिरिधर कविराय विलोवौ काहे पानी ।
मनकी जहां न गम्य विषयकरिसकैन वानी ॥९३॥
आतमभिन्न जो जो क्रिया, सो सो भ्रमको मूल ।

कायिक वाचिक मानसिक, सबी आपनी भूल ॥
सबी आपनी भूल मोक्ष हित करे जु करनी ।
ज्यों रवि चाहै तेज जाय खद्योत कि शरनी ॥
कह गिरिधर कवि पुरुष साध्य सो सबी अनातम ।
स्वतःसिद्ध अपवर्ग रूप चिद्घन तू आतम ॥९४॥
खल सज्जन दो जगतमें, तिनकी हैं यह रीत ।
ज्यों सूचीको अग्रभग, पृष्ठ भाग है मीत ॥
पृष्ठ भाग है मीत एक तो छिद्र करिहै ।
दूसरे तिसे अछादत तताछिन गुन करि भरिहै ॥
कह गिरिधर कविराय आत्मा एकहि अमल ।
निज माया करि बन रह्यो सोई सज्जन खल ॥९५॥
चिदाविलास प्रपंच यह, चिदाविवरत चिद्रूप ।
ऐसी जाकूं दृष्टि है, सो विद्वान अनूप ॥
सो विद्वान अनूप महाज्ञानी ततदरसी ।
निज आतम वितरेक बारता सुने न करसी ॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी त्यागै जिद ।

किन संग करै विवाद वाद जो है इक चिद॥९६॥
राम तूही तुहि कृष्ण है, तुहि देवनको देव ।
तुहि ब्रह्मा तुहि शक्ति तू, तुहि सेवक तुहि सेव ॥
तुहि सेवक तुहि सेव तुहि इंदर तुहि शेशा ।
तुही होय सब रूप कियो सबमें परवेशा ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष तुहि तूही वाम ।
तुहि लछमन तुहि भरत शत्रुहन सीताराम ॥९७॥
बेडा तू दरियाव तू, तूहि वार तुहि पार ।
तुहि तरावे तरे तू तुहि मध डूबनहार ॥
तुहि मध डूबनहार सर्व लीला है तेरी ।
तुहि घंटा तुहि शंख तुही रणसिंहा भेरी ॥
कह गिरिधर कविराय तुही बस्ती तुहि खेडा ।
तुहि नावक तुहि नीर तुही पतवारी बेडा ॥ ९८ ॥
भूल्यो जब तू आपको, तबही भयो खराब ।
रेरेका अस्पद भयो, उतर गई सब आब ॥
उतर गई सब आब दरोदर खावे धक्के ।

धावै कबी केदारखण्ड पुनि जावै मक्के ॥
कह गिरिधर कविराय कुफरके पलने झूलो ।
बकने लग्यो तुफान जमा सब अपनी भूल्यो॥९९॥
कोपकरै जिस शख्सपर, परमेश्वर जब आप ।
लोकन साथ मिलाप पुनि, चाहै दिन अरु रात ॥
चाहै दिन अरु रात बासना उपजै खोटी ।
कृपणताके लिये बुद्धि होजावे मोटी ॥
कह गिरिधर कविराय आपनो करिकै लोप ।
अनातम चिंतन करै यही ईश्वरको कोप ॥ १००॥
करैं कृपा जिस पुरुषपर, अतिशय करिकै राम ॥
ताको कोई ना फुरै, लौकिक वैदिक काम ।
लौकिक वैदिक काम रहै नाहिं करनो बाकी ॥
हर जगा हर बखत ब्रह्मकी होवै झाँकी ।
कह गिरिधर कविराय अविद्या जिसकी मरै ।
सर्व क्रियाके माहिं एक खुद दरशन करै ॥१०१॥
भाग्य सर्वत्र फलत है, नच विद्या पौरुष सरल ।

हरि हर मिल सागर मथ्यो, हरको मिल्यो गरल ॥
हरको मिल्यो गरल हरीने लक्ष्मी पाई ।
षट भग दो सम्पन्न भागकी कही न जाई ॥
कह गिरिधर कविराय कोउ मिल खेलै फाग ।
कोउ हमेशा रोवै आयो अपने भाग ॥ १०२ ॥
देव नाम है भागका, सो है जिसका सूर ।
ताकी हानी करत को, है किसका मकदूर ॥
है किसका मकदूर आप विधि विष्णु महेशू ।
वाकी रक्षा करै भवानी सहित गणेशू ॥
कह गिरिधर कविराय भैरवी शक्ती सैव ।
इक रोम न सकै उखार दाहिने जबतक दैव १०३॥
दैव अधीन व्यवहार सब, अन्य अधीन जुवीर ।
अन्य अधीन जु होय कोइ, पीवन देत न नीर ॥
पीवन देत न नीर तोयमें देत न पावन ।
पावक देत न तपन पवन पुनि देत न न्हावन ॥
कह गिरिधर कविराय आत्मा इक निरवयव ।

उभय अविद्या सहित अरोपत जिसमें दैव॥ १०४॥
अदृष्ट समान बलिष्ठ नहिं, देख्यो जगमें मीत।
करै भगौडा शूरको, पुनि कायरकी जीत॥
पुनि कायरकी जीत धनीको कर है कँगला।
निर्धनको करे धनी शहर करि डारै जँगला॥
कह गिरिधर कविराय इष्टको करै अनिष्ट।
पुनि अनिष्टको इष्ट ऐसो कौन अदृष्ट॥ १०५॥
अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृतकर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हंसिकरि भोगिहै, अज्ञानी भोगै रोय॥
अज्ञानी भोगै रोय पुनः पुनि मस्तक कूटै।
प्रारब्ध जो होय बिना भोगे नहिं छूटै॥
कह गिरिधर कविराय न दीरघ होत सहस्य।
जैसे जैसे भाग पुरुषके फलै अवश्य॥ १०६॥
थोरे दिनके कारणे, कौन उपाधि करै।
किस जीवनके वास्ते, जगमें पचि पचि मरै॥
जगमें पचि पचि मरै आपनी इज्जत खोवै।

एक गमावै हुरमत द्वितीय फजीहत होवे ॥
कह गिरिधर कविराय जु जीवन मुक्ती लौरे ।
तजै सबका संग जान रहना दिन थौरे ॥ १०७ ॥
देख देख गुण जनोंके, मनमें उपजी शांति ।
मिलबेको चित ना चहै, किन्तु मिट गई भ्रांति ॥
किन्तु मिटगई भ्रांति साथ सब गये सन्देह ।
किन संग करिये बैर कौन संग लाइये नेह ॥
कह गिरिधर कविराय बहमकी रही न रेख ।
ज्योंकी त्यों जब वस्तु यथारथ लीनी देख १०८॥
जो संग आश्रम वरनके, ना जातिनके कोल ।
जाये तो मत बैठ तहँ, बैठे तो मत बोल ॥
बैठे तो मत बोल बोलै तो छोर विषेरो ।
वह पूछै कछु व्यवहार थोरमें करो निवेरो ॥
कह गिरिधर कविराय कहै मत तिनके लगजो ।
ना जातिनके कोल वरन आश्रमके संगजो॥ १०९॥
कूकर पागल कटे जिस, वह पागल ह्वै जात ।

त्यों नर मजबी संगते, नर मजबी होजात ॥
नर मजबी होजात बात हिरदे धरि लीजै ।
प्राण जाँय तो जायँ न मजबीका सँग कीजै ॥
कह गिरिधर कविराय अधम हैं सबसे सूकर ।
ताते भी सो अधम मजबका जोजो कूकर ॥ ११० ॥
फांसी जब लग मजबकी, तब लग होत न ज्ञान ।
मजहब फाँसी टूटैं जबै, पावे पद निर्वान ॥
पावे पद निर्वान निरञ्जन माहिं समावे ।
जनम मरन भव चक्र विषे फिर योनिन आवे ॥
कह गिरिधर कविराय बोध बिन भ्रम चौरासी ।
तबलगहोत न ज्ञानमजहबकीजबलगफाँसी १११ ॥
गडे अविद्याने रचे, हाथी डूब अनन्त ।
जोउ गिरचो जिस खातमें, धँसगयो कान प्रयन्त ॥
धँस गयो कान प्रयन्त आपको सुनै न देखैं ।
बाहिरो अँधरो भयो दशो दिशि तम इक पेखैं ॥
कह गिरिधर कविराय यद्यपि शास्त्र स्मृति पढै ।

विधि निषेध युग नदीसे, हुये पवरकर पार ॥
हुये पवरकर पार जगत महा सिन्धु अनादी ।
भेद पाटके सहित जहां डूबे प्रतिवादी ॥
कह गिरिधर कविराय द्वैतको दफ्तर फाटो ।
स्वरूप ज्ञानके भये किसीपर कारण घाटो ११८ ॥
अँधरी पीसै पीसना, कूकर घस घस खात ।
तैसे मूरख जनोंका, धन अहमक लै जात ॥
धन अहमक लै जात सच करि वह भी मरि हैं ।
ताके पाछे और कुबुद्धी दावा करिहैं ॥
कह गिरिधर कविराय भई इक विधकी गन्धरी ।
लाग्यो श्वानको दांव पीसना पीसे अँधरी॥ ११९ ॥
खायो जाय जो खाय रे, दिया जाय सो देह ।
इन दोनोंसे जो बचै, सो तुम जानो खेह ॥
सो तुम जानो खेह सिके पुन काम न आवे ।
सर्व शोकको बीज पुनः पुनि तुझे रुआवै ॥
कह गिरिधर कविराय चरण त्रैधनके गायो ।

दान भोग बिन नाश होत जो दियो न खायो १२०॥
तप करवेको नर्मदा, मरवेको सुरधुनी ।
भजन करनेको है हर, भाषै ऋषिवर मुनी ॥
भाषैं ऋषिव मुनी वसिष्ठ पराशर व्यास ।
दान करै कुरुक्षेत्र साधन ज्ञान संन्यास ॥
कह गिरिधर कविराय शिवोहं शिवोहं जप ।
करणग्रामको रोक न या सम है कोई तप १२१ ॥
गपोडा भाषाका कोई, होय संस्कृतका कोय ।
कोइ गपोडा पारसी, अँगरेजी पुनि होय ॥
अँगरेजी पुनि होय गपोडा कोई अरबी ।
ब्रह्मज्ञान विन विद्या सब ज्यों पाकमें दरबी ॥
कह गिरिधर कविराय वेग समझो कोई मोडा ।
जा करि आतमलभै भला है सोइ गपोडा १२२ ॥
भाषा भूषा फेंककै, सडी संस्कृत डार ।
भय आरोपत जिस विषे, सोहं चिद निरधार ॥
सोहं चिदानिरधार त्याग सिगरी शिरदर्दी ।

परको किस्सो छोड खबर ले अपने घरदी ॥
कह गिरिधर कविराय वेदको समझो आशा ।
तुझमें युग अध्यस्त देववाणी नर भाषा ॥ १२३ ॥
फकीरी करनी कठिन है, छडनी सबी प्रवृत्त ।
जीवत मरना जगतमें, बाह्यान्तर होना निवृत्त ॥
बाह्यांतर होना निवृत्त न रखनी रंचक माताजी ।
जो जैसी काय बने तिसीमें रहना राजी ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिको फारे चीरी ।
एक आत्ममें मगन तिसीका नाम फकीरी १२४ ॥
भिक्षा खावै मांगके, रहै जहां तहँ सोय ।
काम न राखे किसीसों, जो होवै सो होय ॥
जो होवै सो होय विरक्तकी यही निसानी ।
ब्रह्मविद्या बिना अपर बोलै नहिं वानी ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञानकी देवे दिक्षा ।
क्षुधा निवृत्ति अर्थ मांगके खावे भिक्षा ॥ १२५ ॥
लियो ठीकरो हाथमें, दशहों दिशा जगीर ।

ऐसो जगमें कौन है, जो करसके तगीर ॥
जो करसके तगीर सो तो कुछहू नाहीं मानव ।
देव यक्ष गन्धर्व न उतपत हूवो दानव ॥
कह गिरिधर कविराय नाश जिन भर्मको कीयो ।
लोकेलाज सब त्याग ठीकरो हाथमेंलीयो॥ १२६॥
भिक्षू बालक भारजा, पुनि भूपति यह चार ।
नर जानें अस्ति नास्ति कछु देही देहि पुकार ॥
देही देहि पुकार निशि वासर आठो यामू ।
जाग्रत सुपनैं माहिं फुरै ना दूसर कामू ॥
कह गिरिधर कविराय जगतमें कोउ तितिक्षू ।
जिनको तृष्णा नाहिं सो ऐसो विरलो भिक्षू॥ १२७॥
रहनो सदा इकान्तको, पुनि भजनो भगवन्त ।
कथन श्रवण अद्वैतको, यही मतो है सन्त ॥
यही मतो है सन्त तत्त्वको चितवन करनों ।
प्रत्यक् ब्रह्म अभिन्न सदा उर अन्तर धरनों ॥
कह गिरिधर कविराय वचन दुर्जनको सहनों ।

तजके जनसमुदाय देश निरजनमें रहनों ॥ १२८ ॥
बहता पानी निर्मला, पडा गन्ध सो होय ।
त्यों साधू रमता भला, दाग न लागे कोय ॥
दाग न लागे कोय जगतमें रहै अलेदा ।
राग द्वेष युग प्रेत न चितको करैं विछेदा ॥
कह गिरिधर कविराय शीत उष्णादिक सहता ।
होइ न कहुँ आसक्त यथा गंगाजल बहता १२९ ॥
एका एकी सिद्ध पुनि, सिद्ध साधक दोइ मुनीश ।
तीन चार कुटुम्ब सम, लस्कर हैं दस बीस ॥
लस्कर हैं दस बीस तहां नाना विधि झगडो ।
सदा रहै विक्षेप जु मेरी तेरी रगडो ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष जो परम विवेकी ।
करके सबको त्याग सुविचरे एकाएकी ॥ १३० ॥
मनकी मेटें दीनता, करे वासना नाश ।
प्रत्यक् ब्रह्म अभिन्नका, पुनि पुनि बोध प्रकाश ॥
पुनि पुनि बोधक प्रकाश विषैकी ममता जारैं ।

लोक ईषणा आदि कामना सकल निवारै ॥
कह गिरिधर कविराय त्याग अहंता तनकी ।
तत्त्वज्ञान उपदेश दुष्टता हर रही मनकी ॥१३१॥
मनरे मन्दी बात छद, गन्धा तज हंकार ।
ज्ञान धनुष उरमें गहो, करहं ब्रह्म टंकार ॥
करहं ब्रह्म टंकार जरा तू पग धर आगे ।
भर्म चो पञ्च प्रकार हृदय सों ततछन भागे ॥
कह गिरिधर कविराय मूल संसारका खन रे ।
नष्ट होय अज्ञान द्वैत फिर रहै न मनरे ॥ १३२ ॥
देही सदा अरोग है, देह रोग मय चीन ।
यह निश्चय परिपाक जिसु, सोइ चतुर परवीन ॥
सोइ चतुर परवीन विवेकी सोहै पंडित ।
करे अत्यन्त निरसन आतमा लखे अखंडित ॥
कह गिरिधर कविराय आपना आप सनेही ।
परमानन्द स्वरूप और नहिं एहै देही ॥ १३३ ॥
अत्यन्त मलिन यह देह है, देही अतिशय शुद्ध ।

श्रुति स्मृति पुराण शास्त्रका कहा न मानै ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रमै इतको क्षण उतै ।
बन्यो चहै कछु और परमेश्वर आपहै स्वतै १३९॥
प्रतीचा जो सब जगतका, कहूँ विचारकरकवन ।
जामें है स्थित लोकत्रय, सहित चतुरदश भुवन ॥
सहित चतुरदश भुवन नाहै नाहुई ना हुये ।
ज्यों बन्ध्याका पूत न उतपन भये न मुये ॥
कह गिरिधर कविराय दृश्य मृगजलको कीचा ।
तामें जाइ ध्यायो आप हुइके प्रतीचा ॥१४०॥
अच बिन जैसे बरनको, होवत नाहिं उचार ।
त्यों आस्ति भातिप्रियबिना, सिद्ध न हुइ व्यवहार ॥
सिद्ध न हुइ व्यवहार मानसी वाचक कायक ।
सनम फुरण सुन्दरजन जबलग होत सहायक ॥
कह गिरिधर कविराय रहे बहु स्याने पचपच ।
होवत नाहिं उचार बरनको जैसे बिन अच १४१॥
स्वविहीन अक्षर यथा, व्यञ्जन होत मुरदार ।

त्यों सत चिद आनंद बिन, होत प्रपंच असार ॥
होत प्रपंच असार जहां लग कारन कारज ।
जड अनित्य दुख रूप वेदवित कहत अचारज ॥
कह गिरिधर कविराय सोइ तू अनुगत पुर पुर ।
यथा रागनी तान ग्राम मुरछनमें इकसुर १४२॥
द्रष्टा चिद दृश्यवर्गको, पुनि दृश्यमें अनुसूत ।
जन अध्यस्त तामें सबै, यावत भौतिक भूत ॥
यावत भौतिक भूत अरोपित रज्जुसर्पवत ।
भ्रमकर सिद्ध प्रसिद्ध अनातम रूप असत सब ॥
कह गिरिधर कविराय आतमा तूइ समष्टा ।
कलनारहित अशून्य जुचेतनदृश्यके द्रष्टा॥१४३॥
अत्ता जो सब जगतको, सौ भूमाधिष्ठान ।
सोई प्रत्येक आतमा, सोइ ब्रह्म भगवान ॥
सोइ ब्रह्म भगवान् सच्चिदानन्द विश्वेश्वर ।
त्रिधा भेद परिछेद रहित अमीत परमेश्वर ।
कह गिरिधर कविराय एक रस जिसकी सत्ता ।

सो तूई साक्षात् प्रत्यक् ब्रह्मांडको अत्ता ॥ १४४ ॥
त्याग जीवता जीवकी, ईश्वरको ईश्वरत्व ।
दोनोंको धिष्ठान जो, सो निश्चयकरतत्व ॥
सो निश्चयकर तत्व वस्तु गत भेद न जामें ।
समष्टि व्यष्टि सर्वज्ञता अल्पज्ञता आरोपित तामें ॥
कह गिरिधर कविराय मोह निद्रासे जाग ।
ईश्वरकी ईश्वरता जीवकी जीवतात्याग १४५ ॥
क्षुधा प्राणको धर्म है, शील उष्ण तनुधर्म ।
आतम सदा असंग हैं, ज्ञानी जाने मर्म ॥
ज्ञानी जाने मर्म और नहिं जाने कोई ।
कै जानै जिज्ञासु मुक्तपद चाहत जोई ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान जब पीवै सुधा ।
तब निरसंशय पिये प्राणको धर्महै क्षुधा ॥ १४६ ॥
स्याने सेई आखिये, जिनकी स्यानप एह ।
भिन्न भिन्नकरिकै लखै, यह देही यह देह ॥
यह देही यह देह विषैं गुण न्यारे न्यारे ।

प्रमाणों जुगतों करिकै शिवका रूप निहारे ॥
कह गिरधर कविराय और सब निपटइ जाने ।
जिनका आतम दृष्ट वहीहैं पुरुष सयाने ॥१४६॥
संसारी इन जननते, किने न पायो चैन ॥
इक रस निर्छल कपट बिन, कबू न बोलत बैन ॥
कबू न बोलत बैन भनत प्रथम छिन आरय ।
उसी तुण्डसे दूसर छिनमें वदत अनारय ॥
कह गिरिधर कविराय किया चाहै अनुसारी ।
ऋषि मानव देव गंधर्व यक्ष जेते संसारी ॥१४८॥
ढीली भक्ती देखके, होवत सन्त उदास ।
भाव हीनके गृह विषे, करै न दण्ड निवास ॥
करै न दण्ड निवास चीनकर श्रद्धा बादी ।
करै उपेक्षा तिनकी जो अश्रद्धक मोदी ॥
कह गिरिधर कविराय प्रीति जहँ परम रसीली ।
तहां चार दिन टिकै न चाहै सेवा ढीली१४९॥
छोटा जिव हत्या बडी, अलप लाभ बहु खेद ।

सो ना पडै प्रवृत्तिमें, जिन जान्यों यह भेद ॥
जिन जान्यों यह भेद नहीं वह छानत भूसा ।
खोदैं महा पहाड मिले इक लघुसा मूसा ॥
कह गिरिधर कविराय जान्यों जिन मारग खोटा ।
सो ना तिसमें चलैचलै सो मतिका छोटा १८०॥
पंगत तजी प्रवृत्तिका, छोडी जात जमात ।
फारखती सबसे लही, परमेश्वरकी दात ॥
परमेश्वरकी दात भाग जिसके सो पावै ।
भाग्यहीनको ईश मिले तौ शांति न आवै ॥
कह गिरिधर कविराय डार दुष्टनकी संगत ।
वीत राग मन भयो कोनकी चाहै संगत १८१॥
बैल भूल विधि नर रचे, लादै दाढी मूँछ ।
अकल वही हैवानकी, बिना शृंग बिन पूछ ॥
बिना शृंग बिन पूछ और तो पशुकी रहनी ।
भय मैथुन आहार निद्रा पुनि सुननी कहनी ॥
कह गिरिधर कविराय चलै ना सूधी गैल ।

खाल आदमी दीले पहरी है ताबेल ॥ १५२ ॥
बाहर जो अन्तर सुही, आगे पाछे एक ।
जो नासमझे बात यह, ताके पिता अनेक ॥
ताके पिता अनेक तथा जानो तिस माता ।
जहां जहां वह जाइ तहां तहां लहै असाता ॥
कह गिरिधर कविराय एक चिद बातन जाहर ।
सोइ ऊरध सोइ अधर सोइ पुनि अंतर बाहर १५३॥
यारी ता सँग कीजिये, गहै हातसों हाथ ।
दुख सुख संपति बिपतिमें, छिनभर तजै न साथ ॥
छिन भर तजै न साथ महत दृष्टान्त बखानो ।
ज्यों अकाश सँग पोल और इक सुनो बखानो ॥
कह गिरिधर कविराय निमकमें ज्यों रस खारी ।
या प्रकार जो व्यापक तासँग लइये यारी॥ १५४॥
साँई लोक पुकार दे, रे मन तू हो रिन्द ।
यह यकीन दिलमें धरो, मैं सबको खाविन्द ॥
मैं सबको खाविन्द एक खालक इकताला ।

खिलकतकी फना हिर हो हरसे परवाला ॥
कह गिरिधर कविराय आपना दुखी दुखाई ।
मन खुदाई लाजिसम बांग हरदम देसाई ॥ १२५॥
द्रष्टा दृश्य न होत है, दृश्य न द्रष्टा होइ ।
द्रष्टाने जब आपको दृश्यरूप कर जोइ ॥
दृश्य रूप करजोइ इसीते भयो कुचैनी ।
मान्यो निजको शैव शाकत वैष्णव जैनी ॥
कह गिरिधर कविराय सहै नाना विधि कष्टा ।
भ्रांति कूपके माहिं परयो जिस दिनसे द्रष्टा १२६॥
एक फकीरी लाभ जब, दूसर ज्ञान अथाह ।
उभे रतन ढिग जिनहिके, तिनकौ क्या परवाह ॥
तिनको क्या परवाह वस्तु जिस पास अमोलक ।
कौन तिन्होंको कमी अटूट धनजिनघरगोलक ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांति जिन दीनी छेक ।
सो क्यों होवे दीन ब्रह्म व्रत जिनके एक॥१२७॥
लोड रही ना अर्थकी, नही परमारथ भ्रांत ।

कौन वस्तुके वासते फिरे निकासत दांत ॥
फिरे निकासत दांत तभी जब होइं अपेष्या ।
विना प्रयोजन कोइ प्रवृत ना काहू देष्या ॥
कह गिरिधर कविराय फकीरी अपनी ओर ।
प्रमादि ढिग तब जावै जब कछु होवे लोर॥ १५८॥
आवे तो अटकाउ नहिं, जातेको नहिं रोक ।
इस लौकिक व्यवहारमें, हर्ष शोक नहिं टोक ॥
हर्ष शोक नहिं टोक नहीं खाइस इक मासा ।
फकीरी करनी लगी जबै फिर किसकी आसा ॥
कह गिरिधर कविराय, कोइ रोवै कोइ गावै ।
नहीं किसीसों काम भावै आवै जिन आवै १५९॥
रोटी चारों वरणकी, पावत हैं लाधरक ।
कुत्सित मारग छोडकै, चालैं सूधी सरक ॥
चालैं सूधी सरक न मनमें राखैं धरका ।
तिनमें करे विकल्प जोउ सो पामर लरका ॥

कह गिरिधर कविराय किसीकी सुने न खोटी ।
ना काहूकी कहै भ्रांति तजि मांगत रोटी ॥१६०॥
जंगलमें मंगल तुझे, जो तू होवै फकर
खिदमत तेरी सब करैं, दिलके छांडै मकर ॥
दिलके छांडै मकर फकीरीका रंग लागै ।
मूल सहित संसार रोग सगरो भ्रम भागै ॥
कह गिरिधर कविराय कुफरकी तोरे संगल ।
जहँ इच्छा तहँ रहे नगर मा अथवा जंगल ॥१६१॥
भोजन छाजन नीरकी, करै सु चिन्ता मूढ ।
ज्ञानी चिन्ता ना करै, निज पद माहिं अरूढ ॥
निज पद माहिं अरूढ तिनोंको चिन्ता कैसी ।
तिसहीमें आनन्द अवस्था प्रापत जैसी ॥
कह गिरिधर कविराय और ना रखै प्रयोजन ।
आतम चिंतन करै अदृष्ट पहुँचावत भोजन १६२॥
देनी दमडी एक ना, लेनेको न छिदाम ।
गांठ बांध नहिं चालते, फूटी एक बदाम ॥

फूटी एक बदाम न राखैं दूसर दिनको ।
बिना आपने आप भरोसा और न जिनको ॥
कह गिरिधर कविराय रही ना बाकी लेनी ।
कीनो जबी हिसाब न निकसी कौडी देनी ॥ १६३ ॥
पोथी पाना फेंकके, विचरो है निहकाम ।
आतम अनुसन्धान कर, दिलमें रहै अराम ॥
दिलमें रहै आराम और कछु फुरे न संका ।
अहंब्रह्म परिपूरण निशि दिन बाजै डंका ॥
कह गिरिधर कविराय दृश्य तुझ बिन सब थोथी ।
तू सबको धिष्ठान अरोपि जिसमें पोथी ॥ १६४ ॥
जानो नहिं जिस गाममें, कहा बुझानो नाम ।
तिनसरूशनकीक्याकथा, जिनसोंनहिंकछुकाम ॥
जिनसौं नहिं कछु काम करैं जो उनकी चरचा ।
राग द्वेष पुनि क्रोध बोधमें तिनका परचा ॥
कह गिरिधर कविराय होइ जिन संग लिखानो ।
बाकी पूछो जात बरन कुल है क्या जानो १६५ ॥

नाहिं ससुर जामात्रि नाहिं, सेवक सेव्य सँबन्ध ।
तासु क्रिया पिख जोररे, सो मूरख जड अन्ध ॥
सो मूरख जड अन्ध अन्धको है बहु चेरो ।
विना प्रयोजन अहमक जहँ तहँ करै बखेरो ॥
कह गिरिधर कविराय किसीको कहिये काहीं ।
जो होवै कछु निस्बतसो तो सुपने नाहीं ॥ १६६ ॥
जासु हानिसे लाभ नहिं, जासु लाभ नहिं हान ।
ताकी चरचा जो करै, सो बेकूफ नदान ॥
सो बेकूफ नदान पऱ्यो मत्सरकी खाई ।
नहीं जोर नहिं जुलम अकलकी है कमताई ॥
कह गिरिधर कविराय न बैठो तिनके पास ।
वैर करै निर्वैर नाल खोटी बुध ज्यास ॥ १६७ ॥
कीयो चाहै कामको, परे तासमें देर ।
पुना विपर्यय होइ सो, यहि अदृष्टको फेर ॥
यहि अदृष्टको फेर कर्म ग्रह टरे न टाऱ्यो ।
बिन भोगे प्रारब्ध और विध मरे न माऱ्यो ॥

कह गिरिधर कविराय जु पूरब दीयो लीयो ।
सो सो भोगत पुरुष दुःखसुख अपनो कीयो १६८॥
होनी होय सो ना मिटे, अनहोनी ना होइ ।
ऐसो निश्चय जिनहिंको, मानव कहिये सोइ ॥
मानव कहिये सोइ और तो सबहीं पोये ।
अल्प बातको समझत नहिं निज गुरुके खोये ॥
कह गिरिधर कवि जान्यो जिनसे एक अजोनी ।
जिसकी है सब लीला जो अनहोनी होनी १६९ ॥
सांची सांची बात सुन, रे मन छांड पखण्ड ॥
निरंकुश तृप्ति लहै जब तब चीनै एक अखण्ड ॥
तब चीनै एक अखण्ड शुद्ध तब होवै दृष्टी ।
कर्त्ता क्रिया रु कर्म न किंचित भासे सृष्टी ॥
कह गिरिधर कविराय और करनी सब कांची ।
जिसकर आतम लभै जान विद्या सो सांची १७०॥
कीच पीछलो धोइकै, आगे नाहिं लगाव ।
ऐसा तुझको फेर रे, मिलैं न जल्दी दाँव ॥

मिले न जलदी दाँव भनत गुरु सुनै न बहरे ।
सर्व समग्री होत या भूल्यो सिखर दुपहरे ॥
कह गिरिधर कविराय धँसो मत कादे बीच ।
ऊंचे मारग चलौ जहां फिर लहै न कीच१७१॥
ऐसी रचना तैं रची, अतुल असंख्य खमाप ।
रचकर जब देखन लग्यो, भूल गयो फिर आप ॥
भूल गयो फिर आप झूठको सच करि जान्यो ।
साचेको पुनि झूठ देवको देवल मान्यो ॥
कह गिरिधर कविराय सुपनकी सृष्टी जैसी ।
जाग्रतमें रह नाहिं दृश्य सम्पूरण ऐसी ॥ १७२ ॥
मढी बांध बैठत नहीं, नहीं प्रबोधत सती ।
करन ग्रामको वश करै, वीतराग नर यती ॥
वीतराग नर यती न भिक्षा करै सथूला ।
विविध देशमें रहै मिटाय अविद्या मूला ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिकी तोरै तँगडी ।
अन्न प्राण मन बुद्धिकोश आनंद जो मगडी ॥१७३॥

बिगरे तो जो होय कछु बिगरनवालीसै ।
अछेद्य अदाह्य अशोष्यको, कौन शखसको भै ॥
कौन शखसको भै बुद्धि यह जिसने पाई ।
तिसके ढिग दिलगीरि कदाचित नाहीं आई ॥
कह गिरिधर कविराय कालत्रय जो ना डिगरे ।
अचल अछेद्य अकृत्रिम सो कहु कैसे बिगरे १७४ ॥
देह दुःखकी खान है, गृहसत शोक कि खान ।
अविद्या जो है आपनी, जन्माकर पहिचान ॥
जन्माकर पहिचान समझ जो सुखकी खानी ।
जामें वेद प्रमाण पुनः आपतकी वानी ॥
कह गिरिधर कविराय निरंकुश तृप्ती एह ।
छूटै तनु अभिमान हष्ट फिर रहै न देह ॥ १७५ ॥
साक्षीका लक्षण सुनो, साक्षी कहिये सोइ ।
उदासीन चैतन्य पुनि, समीपवर्ती जोइ ॥
समीपवर्ती जोइ सोई तो साक्षी होई ।
इन लक्षण ते रहितको साक्षी कहै न कोई ॥

कह गिरिधर कविराय वेद पुनि लोकहु भाषी ।
हुआ न है नहिं होय और साखीको साखी॥ १७६ ॥
चेलो उनको चाहिये, जिनके धन वा धाम ।
इन बिन चेला जो करै, सो है पुरुष सकाम ॥
सो है पुरुष सकाम कामना वान अजारी ।
वीत रागको स्वांग बनायो महाबजारी ॥
कह गिरिधर कविराय विरक्त जन रहै अकेलो ।
जिनको तृष्णारोग लग्यो सो मूढो चेलो ॥ १७७ ॥
पढनो पुनः पढावनो, वागेन्द्रियका विसी ।
सो तो है यह तबतक, जबतलक होइ न निसा ॥
जबतक होइ न निसा असल दिल अंतर खासी ।
अत्यंत अँघायो पुरुष भात कब खावै बासी ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान मारगको चढनो ।
ब्रह्मधाम साक्षात भये फिर बनै न पढनो॥ १७८॥
सौदा ऐसा कीजिये, जामें परे न टोट ।
जहां जाइ तहँ नफा हो, बन्धानि लगै न पोट ॥

बंधनि लगे न पोट खरच ना लागै पैसो ।
आडरहित पुनि विचरे नख पटकारी वेसो ॥
कह गिरिधर कविराय चढैं हाथीके हौदे ।
ऐसे कौन कुबरव्रत करै फिर नाखिस सौदे १७९॥
खटकेवाली वस्तुको, दीनी जिसने डार ।
भावै रहै बजारमें, भावै बीच उजार ॥
भावै बीच उजार परा रहै मुखै न बोले ।
अथवा बात अनेक करै निशि वासर डोले ॥
कह गिरिधर कविराय चीज जो चारों पटके ।
सुत दारा धन धाम गये तिनके सब खटके १८०॥
पोल निकास्यो जगतको, सुषुप्ति अवस्थामाहिं ।
नाम रूप संसारकी, जहां गन्ध कछु नाहिं ॥
जहां गन्ध कछु नाहिं वरणाश्रम भ्रम त्राटी ।
लेश कहुँ ना रही किसी मतकी परघाटी ॥
कह गिरिधर कविराय आतमा एक अडोल ।
ता विन और प्रपञ्च सर्वको काढ्यो पोल ॥१८१॥

बांधी कसकर कमर जिन, जिस कारजके हेत ।
आलस ताजि तत्पर भयो, सोइ सिद्ध कर लेत ॥
सोइ सिद्ध करलेत बेर ना लगै उसी छिन ।
ज्यों टिटिभनिने अंड सिंधुसों कियो जबी प्रन ॥
कह गिरिधर कविराय चित्तति जिसकी फांधी ।
तिसको सब कुछ सुलभ फेंट जब दृढकरबांधी १८२
साधन बच संपन्न जो, षट् लिंग सहितवेदान्त ।
सद्गुरु मुखसे श्रवण कर, सेवै देश इकान्त ॥
सेवै देश इकान्त बाह्यमुख वृत्ती हरके ।
होवै स्थिर प्रज्ञा मनन निदिध्यासन करके ॥
कह गिरिधर कविराय अहं ब्रह्म करै आराधन ।
अपरोक्ष ज्ञानके भये फेर कछु रहै नसाधन॥ १८३॥
परम प्रेमको विषय जो, सोहैं अपनो इष्ट ।
ता बिन और जु जगतमें, सो सब जान आनिष्ट ॥
सो सब जान अनिष्ट दृष्टि यह निजको जागी ।
सो पुमान उत्कृष्ट श्रेष्ठ अतिशय बड भागी ॥

कह गिरिधर कविराय अलौकिक पायो परम ।
याते परे न और कोउ पुरुषार्थ परम ॥ १८४ ॥
आदर तथा अनादरे, वचन बुरे त्यों भले ।
अप्रभु प्रभुता जगतकी, धर जूतेके तले ॥
धर जूतेके तले राग पुनि द्वेष विनारे ।
महा सिंधुको तरे डुबै क्यों शुष्क किनारे ॥
कह गिरिधर कविराय पहिरि समताकी चादर ।
हर्ष शोक कर दूर तथा दुनियांके आदर ॥ १८५ ॥
खीर पिवैया शखस जो, सो नहिं खावत घास ।
दुग्ध मिलै तो तृप्त हुई, नहिं तो रहै उपास ॥
नहिं तो रहै उपास और उपाव न तीसरा ।
अदृष्टके अनुसार आप रच दीन्हों ईश्वर ॥
कह गिरिधर कविराय है जिनका भोजननीर ।
तिनको नित जल मिलै खीरखोरेको खीर ॥ १८६ ॥
आफत आतमको परी, कुवर्गाध्यास अठीक ।
विना बिचारे सिद्ध है, बिचारे होत अलीक ॥

विचारे होत अलीक सुपनका जैसे लस्कर ।
इन्द्रजालको देव ठुँटको मिथ्या तस्कर ॥
कह गिरिधर कविराय चहै नित होवे जाफत ।
तृतियवासना प्रेत लग्यो चेतनको आफत ॥ १८७ ॥
हाइ हाइ तब लग रहै, जब लग बाह्यहु दृष्ट ।
अंतर्मुख जब ही भई, सब मिट जाइ अनिष्ट ॥
सब मिट जाइ अनिष्ट रहो उत्तर वा बागड ।
जहां जाइ तहँ आनन्द जब मन भयो इकागर ॥
कह गिरिधर कविधाम चारि फिरि आवे धाई ।
जीव ब्रह्म इक ज्ञान बिना ना मिटिहै हाई ॥ १८८ ॥
दशमा ग्रह अध्यास है, नव ग्रहका जो मूल ।
जब लग देहाभिमान है, तबलग मिटै न शूल ॥
तब लग मिटैं न शूल करै केती चतुराई ।
देव जपै जप जपै न सुरको होत सहाई ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान दृढ देवे चसमा ।
मूलाविद्या नाश होइ ग्रह रहै न दशमा ॥ १८९ ॥

श्रद्धा शक्ति उभय कर, होत साधुकी सेव ।
जगमें एक न होइ जो, धऱ्यो रहै गुरुदेव ॥
धऱ्यो रहै गुरुदेव भक्ति तिस करे न कोई ।
बिन कारन कछु कारज उत्पन हुवा न होई ॥
कह गिरिधर कविराय त्यागकर मलिन स्पर्धा ।
जो धन होवै पास संतपर कीजै श्रद्धा ॥ १९० ॥
आतम रथी शरीर रथ, बुद्धि सारथी जान ।
मन डोरी इंद्रिय हय, मारग विषय पिछान ॥
मारग विषय पिछान देह इन्द्रिय मन योगा ।
दुख सुख भोगे भोग तत्त्ववित् कहै प्रयोगा ॥
कह गिरिधर कविराय हुवे एही परमातम ।
बुद्धि सारथी जान देह रथ रथी जु आतम १९१॥
शेषी आतम देव इक, पुत्रादिक सब शेष ।
यह विवेक जाके हिये, ताको कहां कलेश ॥
ताको कहां कलेश समझ हृदये जब आई ।
अन्यो अन्याध्यास तदा तम रहे नगाई ॥

कह गिरिधर कविराय जासमें फजर न पेषी ।
अभय निरंजन देव आतमा सो तू शेषी ॥१९२॥
क्षिप्त मूढ विक्षिप्त पुनि, एकाग्रता निरोध ।
पञ्चभूमिका चित्तकी, आतम इक अविरोध ॥
आतम इक अविरोध भूमिकाको परकाशक ।
आप हुलास स्वरूप पुनः जड वर्ग हुलासक ॥
कह गिरिधर कविराय चिदानन्द सदा अलिप्त ।
लिपायमान मन बुद्धि वृत्ति है जामें क्षिप्त ॥१९३॥
जाग्रत सुपन सुषोपाति, मूर्च्छा पुनः समाधि ।
पञ्च अवस्था बुद्धिकी, आतम रहित उपाधि ॥
आतम रहित उपाधि अकर्ता सदा अभुक्ता ।
क्षुधा पिपासा हर्ष शोक मत्सरते मुक्ता ॥
कह गिरिधर कविराय वृत्ति विक्षेप इकाग्रत ।
सबी अनातम धर्म समाधि पर्यंत सो जाग्रत१९४॥
माया मोह मद राग पुन, ममता दम्भ रु काम ।
यह जामें नाहिं पाइये, सो परमेश्वर राम ॥

सो परमेश्वर राम सर्वका जाननहारा ।
और सबै अध्यस्त आप धिष्ठान अपारा ॥
कह गिरिधर कविराय ध्यान धर सुनरे भाया ।
सो तू भूमा तूहि अरोपित जिसमें माया ॥१९५॥
आश्रम आशा उभय तजि, खावे टुकडो मांग ।
कहूँ किनारे पडारहे, राख टांगपर टांग ॥
राख टांगपर टांग चाह चिंता सब खोवै ।
भावैं जागै निशिभर अथवा दिनभर सोवै ॥
कह गिरिधर कवि मारियत ठाकुर द्वार उपासर ।
धर्मशालपुनिडांडगहैभिक्षुकबिनआसर ॥ १९६ ॥
कांटे तले बिछायकै, करे पुरुषको शैन ।
देत समयको दोष पुनि, तनक परे नहिं चैन ॥
तनक परे नहिं चैन काल अब आयो भारी ।
जिनकी चखमें करै अँगुरिया देवत गारी ॥
कह गिरिधर कविराय मोल दे लेवे त्राटे ।
ताकर चहै अराम गाडकर तनमें कांटे ॥१९७॥

बोवै पड बबूलके, खाई लोडै दाख ।
धनी बननकी कामना, करे संगरै राख ॥
करे संगरै राख पह्न्यौ चाहै क्रमची ।
रँगे रंग चमरूय रगड मंजीठ हिरमची ॥
कह गिरिधर कविराय सुखी सो कैसे होवै ।
तृष्णा राग रु द्वेष ईरषा मत्सर बोवै ॥ १९८ ॥
खानो अपनो प्रारब्ध, फिर क्यों होनो दीन ।
रहनो जगत सराइमें, दावा कहां प्रवीन ॥
दावा कहां प्रवीन जु कीनो अपनो पइये ।
बुरे कामका नाम भूलकर कहहुँ न लइये ॥
कह गिरिधर कविराय जु तिल इक संग न जानो ।
तो संग्रह नहीं बनै बनें देनो वा खानो ॥ १९९ ॥
भोग एक युग भोगता, होवै तहां विवाद ।
जहां न शेषी दूसरो, कोहु न करै विषाद ॥
कोहु न करै विषाद उदय जब होवे सुक्रित ।
मंगल चारो उरै सबी दुर जावै दुष्कृत ॥

कह गिरिधर कविराय यही तो कमला रोग ।
अहंता उभय प्रकार पुनः यह किंचित भोग२००॥
तीन ईषणा त्यागके, करै मुमुक्षू शोध ।
सो परिग्रहको क्यों चहै, जिनके आतम बोध ॥
जिनके आतम बोध वे राखैं आइ चलाई ।
आगे देवनहार जहां तहँ है महमाई ॥
कह गिरिधर कविराय सुहावे कदी न दीन ।
जिसने दई उठाय वासना मनसे तीन ॥ २०१ ॥
मेरी तेरी छोडके, पक्षापक्षहि नाख ।
राग द्वेषको दूर कर, निजानन्द रस चाख ॥
निजानन्द रस चाख और रस लागें फीके ।
एक ज्ञानके भये दुःख मिटि जावें जीके ॥
कह गिरिधर कविराय रंग जो पैरै गेरी ।
तब यह होवे सफल तजै जब मेरी तेरी ॥ २०२ ॥
दुःखी परमेश्वर बने, भई आपनी चूक ।
परमानन्द रस छांडिके, चाटन लाग्यो थूक ॥
चाटन लाग्यो थूक यही तो अहमकताई ।

तिनका चिंतन करै न जिनमें सुख इक राई ॥
कह गिरिधर कविराय हुयो चाहै जो सुखी ।
चीनै अपना आप फेर ना होवै दुखी ॥ २०३ ॥
मौला लोक पुकारदे, रे मन मत हो तंग ।
पुनः किसीको मत करो, गृहमें लागै रंग ॥
गृहमें लागै रंग अविद्या बन्धन टूटै ।
मिलैं विवेकी सन्त कुपन्थोंका संग छूटै ॥
कह गिरिधर कविराय त्याग कर मारग औला ।
जौन तौन परकार आपको लख ले मौला॥२०४॥
जोडे वृत्ती ब्रह्ममें, सर्व तरफसे मोड ।
पुनः प्रमादी नरोंकी, तनक न राखैं लोड ॥
तनक न राखै लोड बहुत तिन साथ न बोलै ।
मन वाणीको अचल करै जो बहुरि न डोलै ॥
कह गिरिधर कविराय प्रीति विषयनकी तोडे ।
सर्व तरफसे खैंच चित्त प्रत्यकमें जोडे ॥ २०५ ॥
कारण महा विछेपका, मेला जात जमात ।
इन समान संसारमें, और न कोउ उपाधि ॥

और न कोउ उपाधि, यथा ए हैं त्रय व्याधी ।
जो जन इनमें धँस तिनोंको कहां समाधी ॥
कह गिरिधर कविराय उपद्रव जो अतिदारन ।
राग द्वेष अपमान मान इनका त्रय कारन ॥२०६॥
रोय रोयके पाइये, रुपिया जिसका नाम ।
जब जाये फिर रोइये, इहमुख जिसको काम ॥
इह मुख जिसको काम इसमें तिसका है रूपी ।
जिसके हेत मंजूरी करैं उठावैं कूपी ॥
कह गिरिधर कविराय खोज कर्दम धोइ धोई ।
पुनः वणिज नौकरी कृषी कर रोई रोई ॥ २०७ ॥
गई गई पुनि गई रे, करके निशि दिन सोर ।
घडियाल पुकरे और कछु, तैं समझी कछु और॥
तैं समझी कछु और यथारथ ना हम भाषी ।
तापर इक दृष्टान्त सुनो बंदनकी साषी ॥
कह गिरिधर कविराय समझ जब उलटी भई ।
घटिका घटिका करके सगरी आयुषगई ॥२०८॥
जैसा कैसा अन्न ले, भिक्षू करै अहार ।

मोटो जीरण कापडो, पहरै तजै विकार ॥
पहरै तजै विकार चीनकर अपनी हुद्दा ।
उदासीन ह्वे रहै सर्वसे पकरे मुद्दा ॥
कह गिरिधर कविराय समीप न राखे पैसा ।
सोई परम विरक्त भने है शास्त्रहु जैसा ॥ २०९ ॥
हुरमत राखी चहै जे, समझ समझने योग ।
समझ यथारथके भये, रहै न कोई रोग ॥
रहै न कोई रोग रोगका मूल अविद्या ।
सो पुनि होवै नाश प्रकाशै आतम विद्या ॥
कह गिरिधर कविराय दूर कर दिलकी दुरमत ।
परलोक लोकमें बनी रहै ज्योंकी त्यों हुरमत २१०॥
स्वतन्तर अपने भयो, जब परतन्तर पाप ।
ब्रह्म लख्यो जिन आपको, जपै कौनको जाप ॥
जपै कौनको जाप करै फिर किनकी सेवा ।
भिन्न आपसे देखै ना कोउ देवी देवा ॥
कह गिरिधर कविराय जपै निशिवासर मन्तर ।
अहं सच्चिदानंद अखंड अद्वितीय स्वतंतर २११॥

तृषावन्तको पतित नर, पुनः तपायो गाम ।
सो नाहिं जावै गंग ढिग, गंगासों उपराम ॥
गंगासों उपराम सुरसरी तीर न जावे ।
स्वर्धुनिको क्या कामजु ताके ढिग चलिआवे ॥
कह गिरिधर कविराय त्यों नखशिख ग्रास्योमृषा ।
सो सतसंग न करै सन्तको क्याहै तृषा ॥ २१२ ॥
गृही असी कर ज्ञानकी, करी अविद्या घात ।
लोक ईषणा वासना, भई दीनता पात ॥
भई दीनता पात सहित देह दृश्य असाता ।
जात पांत सब गई जगतका टूटया नाता ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांति तिसके दब रही ।
ब्रह्म विद्या तेग हाथमें जिसने गही ॥ २१३ ॥
अमूढ पुनः यह मूढ है, शुद्ध अशुद्ध निहार ।
ऐसी जिसकी दृष्टि है, भ्रमै बीच संसार ॥
भ्रमै बीच संसार मरें मर मर फिर जनमें ।
शोक निवर्तन होइ भेद बुधि जबतक मनमें ॥
कह गिरिधर कविराय लखै जो एक अमूढ ।

ताको नाहिं कदाचित भाषे मूढ अमूढ ॥ २१४ ॥
सच्ची जैसी छोड है, ऐसो और न पाप ।
जिसके अन्तर कामना, करै अनेक प्रलाप ॥
करै अनेक प्रलाप ग्रस्यो जो चाह चमारी ।
अहंता ममता त्वंता लगी असाध्य बिमारी ॥
कह गिरिधर कविराय वस्तु जब पावै सच्ची ॥
फेर न मनमें रहै वासना लौकिक कच्ची ॥ २१५ ॥
कोरा देहु जवाब तू, सबको होइ निशंक ।
उपराम बृत्तिको ग्रहण कर, रहै न कोइ कलंक ॥
रहै न कोइ कलंक पंकको सौविध धोवो ।
अपनी इच्छा विचरो बैठो जागो सोवो ॥
कह गिरिधर कविराय वासना रखो न भोरा ॥
रंच न लागे दाग रहै कोरेका कोरा ॥ २१६ ॥
संग न कोऊ राखिये, त्याग आनकी आस ।
एकाएकी बिचरिये, तोडि भ्रांतिकी पाश ॥
तोडि भ्रांतिकी पाश रहै वनमें वा जनमें ।
आतम चिन्तन करै सदा निशिवासर मनमें ॥

कह गिरिधर कविराय चढै जब अपना रंग ।
किसकी राखे चाह करे पुनि किसका संग२१७॥
चार पहर दिन हरवखत, चार पहर पुन रात ।
आतम चिन्तन कीजिये, त्याग अनातम बात ॥
त्याग अनातम बात प्रसंग न कबहुँ चलावै ।
अद्वय अखंड अपार आतम मन तिसमें लावै ॥
कह गिरिधर कविराय आपको चीने सार ।
देह मनइन्द्रिय प्राण यह मिथ्या जानेचार ॥२१८॥
कालह काम करना जोऊ, सो तो कीजे आज ।
मूल अविद्या नींदते, शीघ्रहि तू अब जाग ॥
शीघ्रहि तू अब जाग आपना करले कारज ।
ऐसो मानव देह फेर कब मिलही आरज ॥
कह गिरिधर कविराय काटकर भ्रमके जाल ।
लखो आपको ब्रह्म कालको जो है काल ॥ २१९ ॥
भोग परम सुख आशका, दिलगीरी कर दूर ।
भावे बेच करो सफल, भावे फुहृ कपूर ॥
भावे फुहृ कपूर पहिर कंबल वा खासा ।

भावे धरहू ध्यान भावे नित देख तमासा ॥
कह गिरिधर कविराय करो भावे हठ योग ।
अथवा ज्ञान समाधि करो ब्रह्मानंद भोग ॥२२०॥
सुनियत है भागीरथी, पातक हरन अपार ।
पुनः पाप निर्मूलको, गंगा ब्रह्म विचार ॥
गंगा ब्रह्म विचार कर्म छेदनको छैनी ।
अविद्या उदर विदारनको यम दाढी पैनी ॥
कह गिरिधरकविरायजुचिंतियतकथियतगुनियत ।
सोसबजानअनातम जोजोश्रवणेसुनियत ॥२२१॥

दोहा ।

परम विरक्त रु ज्ञानिवर, गिरिधरजी कविराज ।
कुण्डलिये यह तिन रचे, जिज्ञासूजन काज ॥१॥
है दोसौ इक्कीस यह, कुण्डलिये अतिसार ।
ताको सम्यक् शोधके, साम कीन इकतार ॥२॥

इति श्रीकविगिरिधरकृत कुण्डलिया
प्रथमभाग समाप्त ॥ १ ॥

अथ

गिरिधररायकृत

कुंडलिया

दूसरा भाग.

॥ श्रीः ॥

अथ कविगिरिधरकृत कुण्डलिया।

द्वितीय भाग २.

जाके जानेते बिना, भासित नानाकार।
जास जानतें लीनहो, तेहि वन्दों त्रिधा प्रकार॥
तेहि वन्दों त्रिधा प्रकार करों कछु बाग विलासा।
ब्रह्मविद्या गर्भित ज्ञानमय नरकी भाषा॥
कह गिरिधर कवि रचना आश्रय होवत जाके।
सोनिर्विशेषअकृतिमगिराढिगजायनजाके॥२२२॥
कहू कीर्ति वैराग्यकी, कनक कामिनी दोष।
निषेधरुखण्डनको करूं, हो जिज्ञासु मन होश॥
हो जिज्ञासु मन होश सोइ अब कवित सुनाऊं।
भेद मतनको खण्ड कछुक पुनि औरभि गाऊं॥
कह गिरिधर कविराय मोह मद मनका दहूँ।
हो अभेदको ज्ञान सोय श्रुति अनुभव कहूँ२२३॥

महिमा जो निर्वेदकी, को कहि सके उदार ।
त्यागी बन्धनसों मुकत, बाकी सब गिरफतार ॥
बाकी सब गिरफतार दीन आधीन भयोजी ॥
निज स्वरूपकी भूल आपको मान लियोजी ॥
कह गिरिधर कविराय न लागतहैं इक लहिमा ।
जिसक्षण करहैत्यागउसीक्षणहोवतमाहिमा ॥२२४॥
परमारथ पहिली सिढी, जासु नाम निर्वेद ।
पामर ताको ना लहैं, पावत हैं नित खेद ॥
पावत हैं नितखेद उसे नाहिं त्याग सके सुध ।
मोह मदिरासे मत्त स्वपरकी नहीं रही शुध ॥
कह गिरिधर कविराय जोनरतनुखोत अकारथ ।
बाह्यमुखो होरहेन समझ कछु परमारथ ॥ २२५ ॥
तहँ विरागकी क्या कथा, इन्द्रिय जहँ आराम ।
जौन तौन परकार कर, पोषे हाड रु चाम ॥
पोषे हाड रु चाम बाह्य मुख भये जनूनी ।
करै आपना घात अनातमदर्शी खूनी ॥

कह गिरिधर कविराय शांति तिनके है कहां ।
विषयजन्य सुख चहे वैराग्य न स्वपनेतहां २२६॥
जिह्वासा नाम वैराग्यको, सोहै चार प्रकार ।
यतमानव्यतिरेक एकेन्द्रियजानालिह्यो वशीकार ॥
जान लिह्यो वशीकार सुनो अब तिनका भेदा ।
तर तीव्र तीव्र मन्द त्रिधा विध गावत वेदा ॥
कह गिरिधर कविराय सकल सुखकी है आसा ।
बडे भाग्य है तिनके जिनके होत जिह्वासा ॥२२७॥
पुहुमी चामीके अरथ, होवत है नर दीन ।
जबै प्राप्ति ताकी भई, बुद्धी होत मलीन ॥
बुद्धी होत मलीन पुनः बधिरो हो अन्धा ।
विन पाये दांत निकासे ज्यूँ परवशमें बन्धा ॥
कह गिरिधर कविराय भाव पंडित हो औमी ।
तिनको शांति नरंचजिनोंकोहाटक पुहुमी ॥२२८॥
नारी श्रेणी नरककी, है प्रसिद्ध नहिं लुकी ।
यथा समान परकीया, तथा जानले स्वकी ॥

तथा जानले स्वकी तीनको एकै रूपम् ।
अस्थि मांस नख चर्म रोम मल मूत्रहि कूपम् ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष इन कियो अजारी ।
ऐसा दुष्ट न और जगतमें जैसी नारी ॥२२९॥
योषा मूरति पापकी, ज्यहि पिख भुले गँवार ।
ठौर देखाकर नरकका, सब जन करत खुवार ॥
सब जन करत खुवार भ्रमावत विधि पुनि हरिहर ।
मोहि रज्जु गलबांध नचावत कपिवत घर घर ॥
कह गिरिधर कविराय जोइ नर चाहत मोषा ।
तीव्र गहै वैराग्य तजै हाटक वो योषा॥२३०॥
अंगना देखाकर अंगको, करै पुरुषको भ्रान्त ।
कान्ता याको कहत हैं, हरै मनुजकी कान्त ॥
हरे मनुजकी कांति नाप तिसका है वामा ।
भ्रमावै नरको बांध कण्ठ दृढ मोहकी दामा ॥
कह गिरिधर कविराय पहिरकर करमें कंगना ।
सब अनर्थको हेतु कधी गृह लावन अंगना२३१॥

नैहर जावे रोयकर, पुनि रोती ससुरार ।
सब जन अबला कहत हैं, है सबला बदकार ॥
है सबला बदकार पुरुषको करती कातल ।
कपि ज्यों नाच नचाय अन्त लेजाय रसातल॥
कह गिरिधर कविराय पिशाचनि है यह बैहर ।
सबके देत चपेट न छांडत सासरु नैहर॥२३२॥

सम स्वकीय परकीयकी, परी चुडेल रु हूर ।
इनके त्यागे परम सुख, ग्रहण किये दुख भूर ॥
ग्रहण किये दुख भूर पुरुषकी बुद्धि बुरावे ।
क्षण क्षण फजिहत करत मोह भ्रम तम उपजावे ॥
कह गिरिधर कविराय अजै भी समझ दिवाने ।
हूर चुडैल रु परी परकीय स्वकीय समाने२३३॥

तीनों मूल उपाधि की, जर जोरू जामीन ।
है उपाधि तिसके कहां, जाके नहिं ये तीन ॥
जाके नहिं ये तीन हृदयमें नाहिं न इच्छा ।
परमसुखी सो साधु खाय यद्यपि लै भिक्षा ॥

कह गिरिधर कविराय एक आतम रस भीनो ।
निर्भय विचरे संत सर्वथा तजकर तीनो २३४॥
दमरी चमरी बाल गृह, होय नेह इन बीच ।
ऊपर चिह्न विरक्तका, सो दुर्बुद्धी नीच ॥
सो दुर्बुद्धी नीच पशू गदर्भकी नाई ।
उभय भ्रष्ट पापिष्ठ गृहस्थ न भयो गुसांई ॥
कहं गिरिधर कविराय देखावत बजरी अमरी ।
यती लिंगको धार गांठमें बांधत दमरी ॥ २३५ ॥
पैगम्बर, पीर, औलिये, सब मजहबके स्वान ।
मूसे आठो याम ये, बिन मौला पहिचान ॥
बिन मौला पहिचान शहरमें डूबे अहमक ।
बे यकीन मरदूर निखालिस जाफर बुरबक ॥
कह गिरिधर कविराय दुनियवीके आडम्बर ।
कितनेमें पचमुये औलिये पीर पैगम्बर ॥२३६॥
मौला एकला महजब है, जामें मजहब फनाह ।
जेते मजहब जहानमें, सब शैतानके राह ॥

सब शैतानके राह पैगम्बर उम्मत कावा ।
रोजा सुनत कुरान शहरका नेब निमाजा ॥
कह गिरिधर कविराय यह रस्ता पाया सौला ।
जामें मजहब फनाह एकला मजहब मौला ॥२३७॥
योगी डूबे योगमें, भोगी डूबे भोग ।
योग भोग जाके नहीं, सो विद्वान अरोग ॥
सो विद्वान अरोग अचाह अमान असंगी ।
भेद भावसे रहित बुद्धि तिसकी यकरंगी ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान बिन है सब रोगी ।
भोगी अटकेभोगमें योगमें अटके योगी ॥ २३८ ॥
कलाम बेकैदोंकी कथे, अंतर धँस रह्यो मजहब ।
ख्वाहिश दुनियांकी करे, बेवकूफ सो अजब ॥
बेवकूफ सो अजब बडो कोई है सुखौलिया ।
मूढ सभाके मध्य कहावे महा औलिया ॥
कह गिरिधर कविराय वस्तु दे करे सलाम ।
तिसपर मैं अरु तोर सो अहमक सुलाकलाम२३९॥

काम शैतानोंके करे, औलियोंकी शकल ।
सूरत है इन्सानकी, हैवानोंकी अकल ॥
हैवानोंकी अकल सिंहकी गिरा उचारे ।
सिङ्ग रानौंकी क्रिया पकड गोबरेडे मारे ॥
कह गिरिधर कवि नरम गरम तर चाहेताम ।
भिक्षा खावे मांग यही ऊननके काम ॥ २४० ॥

नाना लिप्सा हृदयमें, बन बैठे उलियाय ।
ऐसे पीर मुरीदको, दोनोंको जुतियाय ॥
दोनोंको जुतियाय मगज कर तिनका पोला ।
पैरों लाके देइ धडाधड जूता सोला ॥
कह गिरिधर कविराय पहिर फकीरोंका बाना ।
अजों न लिप्सा तजे जूत तिनके शिर नाना २४१ ॥

बाता करे बतूनियां, प्राकृत जन मध फूल ।
पूँछन वालो जो मिले, जाय फारसी भूल ॥
जाय फारसी भूल प्रबल कोइ फुरे न युक्ती ।
बाग बैखरी रुके न मुखसे निसरे युक्ती ॥

कह गिरिधर कविराय मूढ मिलकर कम जाता ।
सर्व पक्षसे रहित बनावै घरमें बाता ॥ २४२ ॥
आश्रम वर्ण कुल पन्थमें, जाका है आवेश ।
ब्रह्मविद्या ता हृदयमें, नाहीं करत प्रवेश ॥
नाहीं करत प्रवेश विप्र ज्यों श्वपच अगारा ।
बहु बीथीके डगर बहू निकसत बाग द्वारा ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रमे भ्रंममें निशिवासम ।
जाकाहै आवेश पंथ कुलवर्ण मधि आश्रम२४३॥
धऱ्यो कांच सन्दूकमें, रत्न चुराहै डार ।
कुत्ती पाली गेहमें, दीनी धेनु निकार ॥
दीनी धेनु निकार बडो बुधिवन्त कहावे ।
रजत कीचमें मेलि चामके दाम चलावे ॥
कहगिरिधर कविराय जान निज रत्न परिहऱ्यो ।
पुरुष साध्य कर्तव्यहृदय संदूक ले धऱ्यो ॥२४४॥
कौडीवाले साधुको, कौडी मिले न दाम ।
कौडी बिना गृहस्थका, कोई लेय न नाम ॥

कोई लेय न नाम जहाँ तहँ होय अनादर ।
छोड जातसब तिसको पिसर औ पिदर बिरादर ॥
कह गिरिधर छवि दुनियाँ तिनके रहै कनौडी ।
सो गृहस्थ पराधन चार हैं जिसपै कौडी ॥२४५ ॥
दारा मरै गृहस्थकी, खाना तिसे खराब ।
राखै रांड फकीर जो, रहै न तिनकी आब ॥
रहै न तिनकी आब उभय आलमसे जावे ।
ना वह रह्यो गृहस्थ फकिरका पद नहिं पावे ॥
कह गिरिधर कविराय शोक जो सिन्धुकि धारा ।
सो नर तिसमें बहै अहै जिसके गृह दारा २४६ ॥
रस सह देखै यती जो, कनक कामिनी दोय ।
तिसी समयवह पतित हो, ब्रह्म हत्यारा होय ॥
ब्रह्म हत्यारा होय तेज सब हत होजावे ।
मनकी शक्ति चक्षु वाणि ये सकल पलावे ॥
कह गिरिधर कविराय एक मन औ इंद्रिय दश ।
तिनको करै निरोध त्यागकर लौकिकजेरस २४७॥

तन दुरुस्तसे होतहैं, विषय जन्म सुख भोग।
धन दुरुस्तसे फिरत हैं, आगे पाछे लोग॥
आगे पाछे लोग जो मनकी होय दुरुस्ती।
भोगै ब्रह्मानन्द अविद्या करै न सुस्ती॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी जो हैं हरिजन।
मनको करै दुरुस्त दुरुस्त न चाहै धन तन २४८॥
धनी पुरुषके रहत है, कां कां चारों ओर।
निर्धनके भां भां रहै, मध्याह्न सांझ पुनि भोर॥
मध्याह्न सांझ पुनि भोर प्रमादी दोनों दुखिये।
अज्ञान आवरण बिक्षेप रहित जो सोई सुखिये॥
कह गिरिधर कविराय बात तिसकी सब बानी।
तिसको जैसा राव रंग ठग तैसा धनी॥ २४९॥
बनी बनाई छोडिये, कोउ धरे नाहिं नाम।
मत बिगार कर जाइये, बहुरि भिआवे काम॥
बहुरि भिआवे काम सरूश जो और कालमें।
सो विचार कर करो न धोखा पडे मालमें॥

कह गिरिधर कविराय विना परिग्रह सो धनी ।
जिसकी बुद्धि अद्वितीयबाततिसकीसबबनी२५०॥
राग चिह्न अज्ञानका, चित व्यायाम स्थान ।
तिस तरुमें सबजी कहां, जिस कोटर किरशान ॥
जिस कोटर किरशान लता फल रहन न पावे ।
त्यों शब्दादिमें पीत जहां तहं ज्ञान पलावें ॥
कह गिरिधर कविराय विषयका करदे त्याग ।
आतमाचिन्ता कररहो नहीं हो लौकिक राग२५१॥
बाल तरुण अरु वृद्ध यह, अवस्था तनुकी तीन ।
तीनोंमें जो अन्तकी, अति कनिष्ठ यह चीन ॥
अति कनिष्ठ यह चीन करे धीको विपरीत ।
विस्मरण शास्त्र सो होत जो पूरव कियो अधित ॥
कह गिरिधर कविराय जाति सब ख्वाब खयाल ।
अविद्याका परिणाम न समझतहै वृधबाल॥२५२॥
जरा अवस्थाके सदृश, नहिं नीच अवस्था आन ।
अभिव्यञ्जकसब रोगकी, किरपणताकी. खान ॥

किरपणतकी खान करै तृष्णाको जारा ।
वैराग्य तोष पुरुषार्थ काटनेको है आरा ॥
कह गिरिधर कविराय उदारताको है गरा ।
लोभ मोह युग पुष्ट होय जब आवै जरा ॥२८३ ॥
स्थविरावस्था अधमतर, सबजनको सो अनिष्ट ।
स्व परनको फीकी लगै, नाहिं किसीको इष्ट ॥
नाहिं किसीको इष्ट करै तनुको बदरंग ।
शक्ती होवे क्षीण शिथिल पड जावें अंग ॥
कह गिरधर कविराय नजीक न आवे सबर ।
वैराग्य कमल मुर्झात आवे जब रजनीथविर२८४॥
तुच्छ अवस्था वृद्ध है, करै चित्तको दीन ।
शिथल शरीर स्थूल हो, कायरता हो पीन ॥
कायरता हो पीन वैराग पडजावे ढीला ।
तितिक्षा सही न जाय रची भगवत यह लीला ॥
कह गिरिधर कविराय ब्रह्म अद्वितीय जो पुच्छ ।
जिसको है साक्षात सो तरे अवस्था तुच्छ॥२८५॥

निसबत तेरी किसी सों, ना है न थी न होग ।
मुहब्बत जिन सँग, करे तू, सब सरायके लोग ॥
सब सरायके लोग समझकर पकड कायदा ।
समझेगा जिस वक्त तुझे तब होगा फायदा ॥
कह गिरिधर कविराय जिसमकी जेती किसमत ।
तितनोहीतिसहोयन जिस्मीकोकोइनिसबत२९६ ॥
बेटो बेटी भारजा, भाइ श्वशुर अरु सार ।
पिता पितामह आदिले, सब मतलबके यार ॥
सब मतलबके यार नहीं इनमें कोइ तेरो ।
भयो तुझे परमाद जो इनको बन रह्यो चेरो ॥
कह गिरिधर कविराय, सबनसे झगरा मेटो ।
ना तू बाप किसीको, तेरो कोइ ना बेटो॥२९७॥
ममता सुत विन नारिमें, त्रयं तनुमें हंकार ।
निज आतम विज्ञान बिन, चारों वर्ण चमार ॥
चारों वर्ण चमार पुनः चारोंही आश्रम ।
प्रत्यक बोध विहीन नीच बिन विभ्रम ॥

कह गिरिधर कविराय नाहिं तिनके दिल समता ।
त्रय तनुमें हंकार नारि सुत वितमें ममता ॥२५८॥
ढबुये बबुये बानको, किसने किया फकीर ।
ढबुये बबुयेते बिना, गृहस्थी महा जहीर ॥
गृहस्थी महा जहीर वो तो दुनियांका लौंडा ।
मरम फकीरीका लिया जानै पागल शौंडा ॥
कह गिरिधर कविराय खरीद हथैडे ढबुये ।
फकिर नहीं पाखण्डी पतित जो रखतढबुये २५९॥
लडका लडकी भारजा, काचे तीन मशान ।
अंतर करें प्रवेश यह, देत न इत उत जान ॥
देत न इत उत जान बुद्धि टुकडे कर डारत ।
होवे दृष्टि विपर्यय अन्यको अन्य निहारत ॥
कह गिरिधर कविराय मिटे नाहिं दिलका धडका ।
जिनके हैं धन धाम मेहरी लडकी लडका ॥२६०॥
संसार दशाको देखके, बोले शेख फरीद ।
रांडा बन रही पीर खुद, हूरा मरद मुरीद ॥

हूरा मरद मुरीद भूलकर अपनी अदमीयत ।
अन होये जालमें बँधे दुःख बिन दुखियेथीयत ॥
कह गिरिधर कविराय चले जब श्रुति अनुसार ।
समूल जगत होय नाश फेर ना हो संसार॥२६१ ॥
घिरत तैल तण्डुल लवण, तक्र रु ईन्धन रास ।
निशिदिन चिंतन जो करै, विपुल बुद्धि होनाश ॥
विपुल बुद्धि हो नाश क्रिया कुण्ठित सो पीनी ।
स्थूल पदारथ गहै वस्तु नाहिं पावै झीनी ॥
कह गिरिधर कविराय करत विषयनमें निरत ।
मिश्री दुग्ध जलेबी बरफी चाहे घिरत ॥२६२॥
नाहीं जानत आपको, ताको है धिक्कार ।
श्वान वमनके तुल्य है, जो वह करै अहार ॥
जो वह करै अहार सो तो पुरीष समान ।
प्रत्यक ब्रह्म अभिन्न नहीं जिनके यह ज्ञान ॥
कह गिरिधर कविराय तपे त्रय तापन माहीं ।
ताको है धिक्कार आपको जानत नाहीं ॥ २६३ ॥

लोभ पापका बीज है, रस व्याधीका बाप ।
राग कैदका बीज तज, तीन सुखी हो आप ॥
तीन सुखी हो आप ताप नहिं तुझे तपावे ।
भवनिधि तरे सुखेन फेर नहिं गोते खावे ॥
कह गिरिधर कविराय न तुझको व्यापे क्षोभ ।
काम वृत्तिकेसहित त्यागताजिसक्षण लोभ ॥ २६४ ॥
राँड साँड पुडि भाँड जो तजके इनका संग ।
जहँ तहँ विचरे भूमिपर, करै वासना भंग ।
करै वासना भंग वृत्ति अन्तर मुख राखे ॥
ब्रह्म विद्या विनु और कछू ना सुनै न भाषे ।
कह गिरिधर कविराय तीन शिर राखे डांड ॥
काया वाणी मनपर सोहबत करै न रांड ॥ २६५ ॥
दोष स्थूल शरीरमें, एक दोय नहिं कोट ।
पुनि जो एक कृतघ्नता, या सम और न खोट ॥
या सम और खोट यो निमकहरामी सोग ।
नित शुश्रूषा करतमें फेर न रहै अरोग ॥

कह गिरिधर कविराय अनातम पांचो कोश ।
सबसों हो उपराम चीनकर बहुधा दोष ॥ २६६ ॥
रहै न जिसते विना दिन, तीस प्राणमय कोश ।
सो निशंक हो मांगिये, मांगनमें नहिं दोष ॥
मांगनमें नहिं दोष ग्लानि कहँ सब तज दीजै ।
जैसे तैसे जहां तहांते भिक्षा लीजै ॥
कह गिरिधर कविराय परमसुखको जो चहै ।
उदासीन हो सबसे अन्तर्मुख हो रहै ॥ २६७ ॥
देवी वपुरी घासकी, गोवरका नैवेद ।
जैसे नरके भाग्य हैं, तैसे सुख पुनि खेद ॥
तैसे सुख पुनि खेद तथा अपमान जु माना ।
कर्मनके अनुसार मिले पट भूषण खाना ॥
कह गिरिधर कविराय छोडकर देवा लेवी ।
तिसका चिन्तन करो अरोपितजिसमें देवी॥२६८॥
धीरे धीरे जायगा, सब देवनको साथ ।
मूर्ति काष्ठकीही रहे, बाबा पारसनाथ ॥

बाबा पारसनाथ एक शिव चिद्घन जोई।
तिसते विन यह नाम द्रव्य रहैं न कोई॥
कह गिरिधर कविराय अमोलक रत्न जु हीरे।
जिसके आगे तुच्छ लखो तिस धीरे धीरे॥२६९॥
वायस वानर ऊंधेरे, उपदेश करत हैं खरे।
यह सब ऐसा दुष्ट है, संगहुसे न टरे॥
संगहुसे न टरे बाह्यमुख भयो विकारी।
कृपण दीन बन रह्यो लगी तृष्णा अति भारी॥
कह गिरिधर कविराय नाश जब होय खवाहिस।
तब उदारता जगे त्यागि पुनि वृत्ती वायस२७०॥
खाली रहे न एक दिन, रस्तेकी जु सराय।
भलो बुरो उतरयो रहै, इत उतसे कोइ आय॥
इत उतसे कोइ आय रैनि बसआगे जावे।
तिसके पाछे दूसर और मुसाफिर आवे॥
कह गिरिधरकविराय दार्ष्टान्त जो सोसुनहाली।
सुख दुख इष्टानिष्ट विनातनु रहै न खाली २७१॥

जेठो मंझलो पुरुषको, भाइ अन्नमय कोश ।
यामें हन्ता करी ते, वामें है किया दोष ॥
वामें है किया दोष तलासी लीजे लाला ।
तिसते इसमें विमल निकासियो कौन मसाला ॥
कह गिरिधर कविराय अधम मल जैसो हेठो ।
तासिउ कमति नाहिं सुजाको भैया जेठो ॥२७२॥
आप जाइकर करे तू, जनजनके सँग मेल ।
जिस दिन त्यागे कामना, कोउ न करे झँबेल ॥
कोउ न करे झँबेल आयकर ढिग पुनि तेरे ।
ना कोउ पूछे बात न कोउ तुझको हेरे ॥
कह गिरिधर कविराय मिटे तब तीनों ताप ।
उदासीन हो रहै सर्वसे जब तू आप ॥ २७३ ॥
सवाल करै ना तनक भर, बिना अन्न पुनि तोय ।
क्षुधा पिपासा हरनको भिक्षा मांगे दोय ॥
भिक्षा मांगे दोय त्याग दे सर्व बासना ।
मन वाणीको रोके ज्यों ज्यों करै शासना ॥

कह गिरिधर कविराय पंचकोश तो पंच दिवाल ।
तिसते होवे पार कूदकर तजे सवाल ॥ २७४ ॥
भूख विधाताने रची, सबका रहे गुमान ।
क्षुधा निवारणके अरथ, क्या नाहिं करै पुमान ॥
क्या नहिं करै पुमान विहित अविहित नादेखे ।
खाऊँ खाऊँ करै रु भक्ष्या भक्ष्य न पेखे ॥
कह गिरिधर कविराय न ऐसा जगमें दूख ।
त्रय लोकीमें जैसी यह व्यापी है भूख ॥ २७५ ॥
रोग ग्रसे जब देहको, होवे बुरा हवाल ।
ना तब दे दीदार खुद, ना पुनि करै जमाल ॥
ना पुनि करै जमाल किसीके जाकर धोरे ।
जो कोइ आवे पास कहे तिस पाछे हां रे ॥
कह गिरिधर कविराय चित्तको पाछे सोग ।
पूर्वोक्त प्रकार करै फिर लगे न रोग ॥ २७६ ॥
तजके दवा हकीमकी, पान करे गंगवार ।
देहपातसों ना डरै पुनि दृढ करै विचार ॥

पुनि दृढ करै विचार यही मैं परम निरञ्जन ।
अछेद्यअदाह्य अशोष्य अदुःख सोहै भव भञ्जन ॥
कह गिरिधर कविराय कथे निःसंशय गजके ।
अहंकालके काल वैद्यकी औषधि तजके ॥ २७७॥

वैयाकरण जो कहत हैं, जाका नाम है स्फोट ।
चतुर षष्ठ दश अष्टकी, वही लक्ष्यपर चोट ॥
वही लक्ष्यपर चोट चलावे रोच कमाना ।
तीरन्दाज अनेक सबका एक निशाना ॥
कह गिरिधर कविराय पडो मन तिनकी शरण ।
जाका नाम स्फोटक कहते है वैयाकरण ॥ २७८ ॥

गंगा पाप शशि ताप हर, कल्प दरिद्रहिं चूर ।
पाप ताप अरु दीनता, सन्त संग हो दूर ॥
सन्त संग हो दूर अविद्या आदि कलेशू ।
संशय शोक विपर्यय भ्रमको रहै न लेशू ॥
कह गिरिधर कविराय शुद्ध तिनका मग चंगा ।
सो भोगत ब्रह्मानंद कठौती तिनको गंगा॥२७९॥

मिलनो जाकर जनोंको, आछे तीन प्रकार ।
अर्थ परमारथ लिये वा, परम सनेही यार ॥
परम सनेही यार पायकर कीजै मेला ।
इन बिन और न संग एक पग चले न भेला ॥
कह गिरिधर कविराय चौथेके संग जो मिलनो ।
बेवकूफको काम सो नाकिस ऐसो मिलनो २८० ॥
मतलब होय पुमानको, बसे श्वपचके धाम ।
बिना प्रयोजन विप्रको, कथन करै नहिं नाम ॥
कथन करै नहिं नाम न जावे वाके धोरे ।
जो आवे वह पास कहै तिस पाछे होरे ॥
कह गिरिधर कविराय खायके जावे सतलब ।
तऊ न माने देख तुच्छ जो आपनो मतलब २८१ ॥
हुई बौरकी बुद्धि तिस, जिसको भडकी पौन ।
अवाच्य वचन यद्वा तद्वा, बकै सर्वथा तौन ॥
बकै सर्वथा तौन भवन तज बाहर जावे ।
क्षण नाचे क्षण कूदै क्षणकमें भस्म उडावे ॥

कह गिरिधर कविराय घसी जाके दिल हूई ।
क्या नहिं करै प्रलाप विश्व लोलुप घी हूई॥२८२॥

अकलके घाटा जहँ तहां, कौन दुःखकी कमी ।
काम क्रोधकी दयासे, जहां जाय तहँ गमी ॥
जहां जाय तहँ गमी नजीक न आवे शादी ।
तृष्णा सहित अविद्याकी जहँ मिहर अनादी ॥
कह गिरिधर कविराय ये कीने उपजे हक्कल ।
जबलग पैदा होय न घरकी नूरी अक्कल ॥२८३॥

बूझी बात निपालकी, बतावे खूबरो रान ।
ऐसी बुद्धीका धानी, क्यों न होय वीरान ॥
क्यों न होय वीरान जासमें हुइ बदरंगी ।
मांग्यों गुले अनार पकडकर ल्यायो मुरगी ॥
कह गिरधर कविराय ढिगपडी वस्तु न सूझी ।
ऐसो उत्तर दियो जो पूछे बात न बूझी॥२८४॥

अनात्ममेंबुद्धि आत्मा, अशुच शुच दुखसुखधार ।
अनित्य विषेबुद्धि नित्यजो अविद्या चारप्रकार ॥

अविद्या चार प्रकार समझले करज तूला ।
जो अपनो अज्ञान सोइ हे काणा मूला ॥
कह गिरिधर कविराय पिखे जब एक परातम ।
तभी सर्वथा नष्ट होय जो बुद्धि अनातम ॥२८५ ॥
अकड आवरण अविद्या, विक्षेप कंप वायतरुण ।
जकड लिये युग रोगने, वैराग्य विवेक दो चरण ॥
वैराग्य विवेक दोचरणबिना चलियो नहिंजावे ।
निशि दिन रहै कलेश मोक्षपद कैसे पावे ॥
कह गिरिधर कविराय छोड दुनियांके मक्कड ।
ज्ञानरसायनसेव नष्ट हो कँप अरु जक्कड २८६ ॥
भ्रम लिप्सा करण पटवता, पुनःप्रमाद अधर्म ।
चतुर दोषकर दुखित जे, नाहिं जाने श्रुतिमर्म ॥
नाहिं जाने श्रुति मर्म पुरुष अपराध न नाशे ।
सम्यक बोध न होय यथारथ तत्त्व न भासे ॥
कह गिरिधर कवि बँधे अविद्या काम रु कर्म ।
कर्णा पाटवता प्रमाद जिहिं लिप्सा भर्म ॥ २८७ ॥

कृपा देह अध्यासकी, अविद्याको परताप ।
बेमुख भये स्वरूपते, जपै अनातम जाप ॥
जपै अनातम जाप न सारासार बिचारे ।
लौकिक शब्द विचित्र परस्पर बैठ उचारे ॥
कह गिरिधर कविराय आपको मान्यो स्वपा ।
रचे मलिन संकल्प देह अध्यासकी कृपा२८८॥

करनो जो सो ना करै, मिल देह इन्द्रियसाथ ।
आक ढाक बब्बूलमें, फिरे डारतो हाथ ॥
फिरे डारतो हाथ निकम्मे रचे पँवाडे ।
आयू दीना खोय मुफत इन भँगके भांडे ॥
कह गिरिधर कविराय होगो तब तेरो तरनो ।
कृतकृत्य चीने आप छोडकर सगरो करनो २८९॥

करुणा हो श्रीरामकी, औ गुरुको परताप ।
पुनः पुरुषार्थ आपनो, कटै अविद्या पाप ॥
कटै अविद्या पाप जुडे जब यह संयोग ।
देह इन्द्रियमन प्राण माहिं कोइ रहे न रोग ॥

कह गिरिधर कविराय छुटै जब जन्म रु मरना ।
कृतकृत्य भयो पुमान बहुरिकछुरंहेनकरना २९० ॥
चोरी जारी मिथ्या ब्रह्म, विद्याके प्रतिकूल ।
ताते त्यागे सन्त जन, है अनर्थको मूल ॥
है अनर्थको मूल नाम तिसका मत लीजै ।
श्रवणो भी नहिं सुने चित्तसे रंच न दीज ॥
कह गिरिधर कविराय भई तिनकी मति भोरी ।
मुखम बोलत झूठ करत जो जारी चोरी ॥२९१ ॥
दलाली क्वैलेकी करे, कर काले अरु वदन ।
काले होवें कापडे, कालो ही सब सदन ॥
कालो ही सब सदन रदनको कालुष लागे ।
नख लौं शिख पर्यन्त जहां तहँ स्याही दागे ॥
कह गिरिधर कविराय मूढ सो भ्रमी पलाली ।
आतम विद्या विना करै जो और दलाली २९२ ॥
राशी है सब शल्यकी, यह जो भौतिक देह ।
अनात्म रूप पहँचानके, त्यागो सकल सनेह ॥

त्यागो सकल सनेह चीन क्षणभंगुर मायिक।
आतमसों कर प्रीति प्रीतिके जो प्रभु लायक॥
कह गिरिधर कविराय तुझे फिर होय न हांसी।
जब चीन्है तीन शरीर असतजडहैदुखराशी॥२९३॥
रकम भुलाई बद बखत, ऐसो भयो बेहोश।
हिसाब न समझे अकिलबिन, देतऔरको दोष॥
देत औरको दोष यही तौ बडी खराबी।
तकब्बुर मादिरा पान कियो बन रह्यो शराबी॥
कह गिरिधर धोखे चन्दनके लै आयो बकम।
घरमें पेड मलागरको नहिं चीन्हत रकम॥२९४॥
भैस दुहै माधि छालही, फिर ईश्वर दोष धरै।
जैसी हम सँग करी विधि, वैरीके न करै॥
वैरीके न करै पडोसिनको दे गारी।
इस जादू कियो अपार होवे रंडा मुहँकारी॥
कह गिरिधर कविराय अवशकी चाहै ऐस।
जामें छिद्र हजार तासमें दोहै भैस॥२९५॥

श्रावण पृथिवी पर सुवे, पूस बिछावै खाट ।
सो नर कैसे कर बचै, चलै जेठमें बाट ॥
चलै जेठमें बाट होय नित तिनका मरना ।
वाके नाश निमित्त और उपाय न करना ॥
कह गिरिधर कविराय जो पकड़ै अपनो दामन ।
जन्म मरणसे बचे सुवे जहँ इच्छा श्रावण ॥२९६॥
कारीगरके कसे बिन, सूधो होय न काठ ।
वैयाकरण ते विना शुद्ध न होवे पाठ ॥
शुद्ध न होवे पाठ बात जो अतिशय पीना ।
कहु तत्त्वज्ञ गुरु विना वस्तु क्यों पावे झीनी ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या जावै मारी ।
महावाक्य गुरुद्वार बाण जब लागे कारी ॥ २९७ ॥
नटुएका शागिर्द जो, फांदत कूदत तात ।
बार बधूका सोहबती, नाचै दिन अरु रात ॥
नाचैं दिन अरु रात जो जिनकी संगति करहै ।
तिसका हुन्नर सीख लेत सब तद्वत रह है ॥

कह गिरिधर कविराय शिष्य पटुएका पटुआ ।
बेनवाका बेनवा शिष्य नटूएका नटुआ॥ २९८ ॥
सोलै कला प्रपंच जो, तिनमेंकी इक कला ।
संसारी बूझति तिसे, है प्रवृत्तिका लला ॥
है प्रवृत्तिका लला पर्‍यो अभ्यास कूपमें ।
विना रज्जु विन संगल बांध्यों नाम रूपमें ॥
कह गिरिधर कविराय ग्रंथि जब चिद्जड खोले ।
जानै जगत असार अवयव हैं जिसके सोले ॥२९९॥
करन ग्राम अध्यात्म है, विषय सर्व आधिभूत ।
आधिदैविक पुनि देव है, त्रिपुटी लख अवधूत ॥
त्रिपुटी लख अवधूत रजो तम सतगुण रूप ।
आतम त्रिगुणातीत चिदानन्द स्वरूप ॥
कह गिरिधर कविराय पडे जो गुरुकी शरण ।
तिस जनको हो ज्ञान रजोगुण संगरै करण॥३००॥
वृषभवृषभयुग मिले तब, जब किय सिंह निपात ।
बहुरि वृषभ उत्पति भयो, इन यों कुल संहात ॥

इन यों कुल संहात जनक जननी सब भ्राता ।
कन्याका कर घात सहित निज अपनो गाता ॥
कह गिरिधरकविरायभाणितसनकादिक ऋषि सभ ।
होय मेषको नाश जबि उपजे निज वृषभ॥३०१॥
मेष मेषको मेषसों, हो रह्यो मकर विशेष ।
मकर भयो जब मकरको, वही मेषको मेष ॥
वही मेषको मेष मेषने मेष निदार्‌‌यो ।
दियो कुम्भको फोड मीनको उदर विदार्‌यो ॥
कह गिरिधर कविराय मिटाई मनकी रेष ।
मिथुन करक युग वृश्चिक कीये हुये तुला मेष ३०२
अध्यातम अधिभूत पुनि, अधिदैविक लखिलेहु ।
अभ्यास विस्मरण गरभ, और चार ज्वर एहु ॥
और चार ज्वर एहु तीन हैं जाके अन्तर ।
पंडितको है सात तास कर तपे निरंतर ॥
कह गिरिधर कविराय एक ज्ञानी परमातम ।
जामें राग न शोक पाप ना पुण्य अध्यातम३०३॥

जिनको अपने वाक्य पर, आप नहीं विश्वास ॥
मूढनके उपदेश कर, कैसे जा अभ्यास ॥
कैसे जा अभ्यास कपट लिये बोलत वाणी ।
कथै और करै और तो केवल है अज्ञानी ॥
कह गिरिधर कविराय समझको लेस न तिनको ।
आपनहीं विश्वास वाक्य अपने पर जिनको २०४ ॥

बेधे शर सँग रोम इक, ऐसा तीरंदाज ।
चूक पडे तो पर्वता, बेइलमोंका शिरताज ॥
बेइलमोंका शिरताज जगतमें बडो चुनारा ।
बेध सके नाहिं दीर्घ गिरी पुनि थूल मुनारा ॥
कह गिरिधर कविराय मेरु छलको नाहिं भेदे ।
जानलई यह विद्या कचको क्यों नाहिं बेधे ॥ २०५ ॥

ज्ञानी पुरुष बेकैद हैं, अज्ञानी जनकैद ।
परमेश्वर इक वैद्य हैं, औरहु सबै अवैद ॥
औरहु सबै अवैद चिकित्साकार हैं जेते ।
लोभी कपटी बोध शून्य निश्चय कर तेते ॥

कह गिरिधर कविराय कहांलग कथौं कहानी ।
ज्ञानी जब बेकैद पुरुष है कैद अज्ञानी ॥ ३०६ ॥
संग नहीं गो गधेको, सैंधव सिता न मेल ।
विड्राह सँग इन्द्रको, शोभित नाहिंन केल ॥
शोभित नाहिंन केल तेल घृतको नहिं योगा ।
चक्करवर्ती भूप खरी सँग करै न भोगा ॥
कह गिरिधर कविराय जो योगी चहै न दंग ।
त्यों प्रवृत्ति निवृत्ति पुरुषको बनै न संग ॥ ३०७ ॥
कर्म जो अष्ट प्रकारके, कहे जैन मत माहिं ।
सो सब धर्म अनातमा, आतममें कछु नाहिं ॥
आतममें कछु नाहिं याहिमें हेतु बखानो ।
कर्ता बिना न कर्म आतमा अक्रिय मानो ॥
कह गिरिधर कविराय त्याग किरिया सब भर्म ।
उदासीन असंग विष कहु कैसे कर्म ॥ ३०८ ॥
उपास्य उपासक भाव जो, एता माने भेद ।
जन्म मरण भयको लहै, धिक्कार करे त्याहि वेद ॥

धिक्कार करै त्यहि वेद देव सब करै निरादर ।
तत्त्व विदोंकी सभा माहिं पावे नहिं आदर ॥
कह गिरिधर कविराय आपको आपे नाशक ।
जो एतो मानेभेदभाव उपास्या उपासक॥ ३०९ ॥
दास कहावे बावरो एकातमके माहिं ।
उपास्या उपासक भाव जो, सो स्वपनेहू नाहिं ॥
सो स्वपनेहू नाहिं जागृतकी कौन कहानी ।
अद्वै रूप अखंड पाइयँ नाहिं जहँ वानी ॥
कह गिरिधर कविराय देखो यह अजब तमासा ।
एकातमके माहिं कहावे बौरे दासा ॥ ३१० ॥
ईश अनादि पुनि शुद्धचिद, जीवेश्वर को भेद ।
अविद्या चिद संबन्धयह, षट् अनादिं कहिवेद ॥
षट् अनादि कहि वेद पञ्चते अन्तवान है ।
ब्रह्म अनादि अनन्त भेद विन श्रुती मान है ॥
कह गिरिधर कविराय सो मूरखविश्वे वीसं ।
जो वास्तव मानै भेद करै ताको ईश ॥ ३११ ॥

बैदिक लौकिक शुध अशुध, पावत है परयोग ।
अधिष्ठानमें कल्पित सबै, ताते त्यागन योग ॥
ताते त्यागन योग सर्वथा सर्व नियन्तर ।
परा पश्यन्ती मध्यमा, वैखरी वाकू परतन्तर ॥
कह गिरिधरकविराय असतजड दुखमयवैदिक ।
यावतहैं परयोग जानने लौकिक वैदिक ॥ ३१२ ॥
धारे अर्थ अनेकको, धातू कहिये येव ।
तै धारचो सब जगतको, तू चिद धातू देव ॥
तू चिद धातू देव पिखे जब वैभव अपना ।
तब होवे कृतकृत्य रहै नाहिं कोई कलपना ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष आपको आपेतारै ।
वाक्य अर्थ अखंड जबी अभ्यन्तर धारै ॥ ३१३ ॥
कृषी शब्दका वाच्य भू, णका अर्थ आनन्द ।
दोनोंकी जो एकता, सो हैं कृष्ण मुकुन्द ॥
सो है कृष्ण मुकुन्द ब्रह्म अद्वितीय अखण्डा ।
सह विलास आरोपित जामें माया रण्डा ॥

कह गिरिधर कविराय जो सूक्षम दर्शी ऋषी।
जाके सत्य बखाने ताको वाचक कृषी ॥ ३१४ ॥
शक्ति कृष्ण जो देवकी, राधा कारण जगत।
अनिर्वचनीय अनादि अज, अव्याहत अव्यक्त ॥
अव्याहत अव्यक्त अघटना घटन पटीसी।
विन उपकरण प्रपञ्च रचे नानाविध नटीसी ॥
कह गिरिधर कविराय करावे तबलग भक्ती।
जबलग पुरुष न लखेकृष्ण अहंराधा शक्ती ३१५॥
तूहि शुद्ध परमातमा, तूहि सच्चिदानन्द।
चतुर्वेद यों कहत हैं, व्यास वशिष्ठ मुकुन्द ॥
व्यास वशिष्ठ मुकुन्द तत्त्ववित यावत भूसुर।
परमेश्वर अद्वितीय न भाषि तुझ विन दूसर ॥
कह गिरिधर कविराय धार सो निश्चय तूही।
तूही सच्चिदानन्द शुद्ध परमातम तूही ॥ ३१६ ॥
तनी तुही कोई, ही पिण्डी क्षेत्रज्ञ।
तुही शरीरी तू देही, तू जिस्मी आलज्ञ ॥

तू जिस्मी आलज्ञ तुही तू साक्षी निज रूप ।
तू प्रत्यक कूटस्थ तुही है ब्रह्म अनूप ॥
कह गिरिधर कविराय तूही तो चिन्तामनी ।
कामधेनु तुहि कल्पतरु तूही तनु तूहि तनी ३१७॥
वेणु पात्र मृण्मय करे, आलाबू पुनिदार ।
भिक्षुको चारों विहित हैं मनु भणियो निर्धार ॥
मनु भणियो निर्धार एक इनमें कोउ राखे ।
पात्र भेद ना करै यती संग्रह बुधि नाखे ॥
कह गिरिधर कविराय धातुका छुहै न रेणू ।
जल आनन हित गहै तुंबिका अथवा वेणू॥ ३१८॥
कपरा जिसका दशो दिग, जहां रहे तहँ पास ।
अन्नोदककी ना कमी, फेर कौनकी आश ॥
फेर कौनकी आश आश जिसके सोया जी ।
भावे होवे पंडित अथवा मूरख काजी ॥
कह गिरिधर कविराय सन्तको जु मिले छपरा ।
दो लकडीकी धूनी फेर न चाहे कपरा ॥ ३१९ ॥

मांगन गये सो मर रहे, मरेसे मांग न जाय।
मांग खानो है फकिरको अव्वल सेरा जाय॥
अव्वलसेराजाय सो तो पुनि इसको किसको।
और किसीकी नाहिं इसकी है पुनि इसको॥
कह गिरिधर कविराय वैराग्य विवेक जो टांगन।
तापकर असवारी जावे पुनि भिक्षा मांगन॥३२०॥
कम खानेमें जात है, थूल देहके रोग।
गम खानेसे लिंगमें, व्यापत नाहिंन शोग॥
व्यापत नाहिंन शोग दूर होवन दुचिताई।
क्रोध दंभ हंकार लोभकी रहे न राई॥
कहे गिरिधर कविराय वासना त्याग कह्यो शम।
इंद्रियवत जो चञ्चल सो भी होत जात कम ३२१॥
टुकडा मिलकर खालेवे, आसन राखै फरक।
जन समूहमें जायके, कबू न होवे गरक॥
कबू न होवे गरक ईन है यही फक्करकी।
जौन तौन परकार त्यागे बात मकरकी॥

कह गिरिधर कविराय संग्रह करे न टुकरा ।
कामिल सोई फकीर मांगकर खावे टुकरा ॥३२२॥
खुशी सहित गुजरान है, मसत फकीरनकी ।
कभी तो मुष्टी चनेकी, कभी खांड पुनि घी ॥
कभी खांड पुनि घी कभी पहिरे मश्मीना ।
कभी जर्जरा कन्था ओढे होत न दीना ॥
कह गिरिधर कविराय शांतिवृत्ति जिसकी पुशी ।
तिसको नहिं दलगीरी व्यापे इकरासखुशी ॥३२३॥
लाग्यो मन जिस फकरका, मजहब फकीरी माहिं ।
कैद मजहबियोंकी जोऊ, तिसमें आवत नाहिं ॥
तिसमें आवत नाहिं जो वाहिमियो किया कनूना ।
जो जो कथे कलाम सुइसो महा कनूना ॥
कह गिरिधर कविराय फकर गफलतसे जाग्यो ।
फिरकबहो गिरफतारीरन्दगीमें मन लाग्यो ॥३२४॥
हजर न ज्ञानी पुरुषकी, देह पातमें वीर ।
रीर पात होय श्वपच गृह, अथवा गंगानीर ॥

अथवा गंगानीर मरुस्थलमें वा उत्तर ।
ब्रह्मरूप वह भयो गिरे तनु यत्तर कुत्तर ॥
कह गिरिधर कविराय रह्यो नहिं शिरपर करज ।
देव ऋषि अरु पितृ ऋणको नाहिं यामेंहरज ॥३२८॥
जो तुझको तोला झुके, तू झुक सेर पचीस ।
मरोर करै इक तस्सुभर, तू कीजै हाथ बईस ॥
कीजे हाथ बईस रीति व्यवहार कि ऐसी ।
जैसा जैसा देव जगतमें पूजा तैसी ॥
कह गिरिधर कविराय रोतेके सँग रोते जो ।
हँसते सँग हँस मिलो पुरुष हँसके बोले जो३२६॥
नारी होवे नर हुवे, युवा वृद्ध जो कोय ।
जो जाको चाहै नहीं, ताको चहै न सोय ॥
ताको चहै न सोय रीति अज्ञ तज्ञकी येही ।
दुष्ट बुद्धि संग दुष्ट साधुके परम सनेही ॥
कह गिरिधर कविराय खिलारी साथ खिलारी ।

प्रेमी साथ प्रेम करै पशू बालक्क नर नारी॥३२७॥

जो जिनसे मुरझात है, तो तिनसे सकुचात।
जिसको पिख जो विगस है, तिसे देख विगसात॥
तिसे देख विगसात रीति धुरसे चल आई।
अज्ञ तज्ञकी रीति न इनमें संशय राई॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष उत्तम है सो।
राग द्वेषसे रहित जगतमें विचरे जो॥ ३२८॥

तुझको हम तैसा चहैं, जैसे हमको तुम।
निज करतूतको समझके, भयो तुरतही गुम॥
भयो तुरतही गुम न बोलनकी रही हाजत।
ज्यों लीने तन्तु उचार सरँगिया बहुरि न बाजत॥
कह गिरिधर कविराय यथा तुम जानत मुझको।
तैसेही हम जानत हैं निश्चय कर तुमको॥३२९॥

नेकी नेका साथ जो, खैर खैरियत वीर।
बदी करै सँग बदोंके संग शरीयत धीर॥
संग शरीयत धीर बुरे संग करै भलाई।

इन्सानोंकी रीति किसी बिरलेकी आई ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष जो परम विवेकी ।
जौन तौन परकार करै सबके सँगने की ॥ ३३० ॥
चाहे तुझको सर्व जन जबलग तू अनुसार ।
प्रतिकूल भये ऐसे उडे, आग लगे घनसार ॥
आग लगे घनसार रहे नहिं पाछे भस्मी ।
सिंहनाद सुन यथा पलावै जम्बुक पश्मी ॥
कह गिरिधर कविराय आप तू जब निर्वाहै ।
राव रंक नर नारि बाल वृद्ध क्यों नाचाहै॥ ३३१ ॥
हाहा हीही करनसे, होत परस्पर प्रेम ।
करामातसे मुलाकातमें, अधिक शक्ति यह नेम ॥
अधिक शक्ति यह नेम वाकफीमें यह बल है ।
सिद्धि लगती लगे महिरमी प्रथमें फल है ॥
कह गिरिधर कविराय काट दुनियांका फाहा ।
तिसमें गाता मारन जिसमें हीही हाहा ॥ ३३२ ॥
हमको वह देखत नहीं, हम निरखे तिस ओर ।

प्रीति हमारी अतिभई, लग्यो मचावन शोर ॥
लग्यो मचावन शोर बडी अक्किलका खाविंद ।
वह नहिं बोले मुखो करत इह फिरे खुशामद ॥
कह गिरिधर कविराय खबर जा देवो वाको ।
जोहै हमरा मीत काल त्रय चाहे हमको ॥ २३३ ॥
मुडियो मन जिस वस्तुकी, तरफो दोष निहार ।
सब इन्द्रिय तिस विषयसों, हट गये एकैबार ॥
हट गये एकै बार कोऊ तिस तरफ न जावे ।
चित चलियो जिस ओर करण गण पाछे धावे ॥
कह गिरिधर कविराय ज्यों फूटो कांच नजुरियो ।
तैसे दिल ना मिले तनिकसा जहिते मुरियो २३४॥
जहुर देखकर नरोंके, करी चित्तको तर्क ।
रे मन भोंदू बावरे, तू क्यों होवै गर्क ॥
तू क्यों होवै गर्क कोउ नयन कोउ इच्छू ।
कोइ स्वारथी जान कोऊ बकवादी बिच्छू ॥
कह गिरिधर कविराय शोक ना व्यापे बहुरि ।

आप उपेक्षा करै चीनकर सबकेजनहारी॥ २२५ ॥
जेती जेती माहिरमी, तेतो तेतो पाप।
जेता करहै संग्रह, तेता सहै सन्ताप ॥
तेता सहै सन्ताप यह तो निश्चय कारि जानी।
जगमें है परसिद्ध बात कछु नाहिं न छानी ॥
कह गिरिधर कविराय सुनाऊं तुझको केती।
उतनी हत्या जान वृत्त बाह्यमुख जेती ॥ २२६ ॥
चीने प्रथम जो आपको, धूल देह पुनि अमर।
राग द्वेष बकवाद पर, सो नर बांधे कमर ॥
सो नर बांधे कमर जो ऐसो कबहु न माने।
सो क्यों मत्सर करै विवेकी परम सयाने ॥
कह गिरिधर कविराय पुरुष सो परम प्रवीने।
तजकर देह अभिमान आपको अद्वै चीने २२७ ॥
अवस्था उत्तम सहज है, मध्य धारणा ध्यान।
शास्त्र चिंतन कनिष्ठ है, अतिकनिष्ठ तेहि जान ॥
अति कनिष्ठ तेहि जान वार्ता लौकिक जेती।

सो तुम अधम पछान शुभाशुभ यावत तेती ॥
कह गिरिधर कविराय और सगरो तज फस्था ।
ग्रहण करो इक वही कही जो प्रथम अवस्था३३८॥
कथा न सुननी बांचनी, ना करना परमोद ।
पढे पढावे और जो, वा सँग नाहिं विरोध ॥
वा सँग नाहिं विरोध सुने अथवा कोउ बांचे ।
भावे धरे ध्यान भावे निशि वासर नाचे ॥
कह गिरिधर कविराय रोग यथा औषधपुन तथा ।
जिसको भ्रांतिआजार सुनोनिशिवासरकथा३३९॥
आधी साखी कर कह्ो, कोटि ग्रन्थको सार ।
ब्रह्म सत्य जग मिथ्या, जीव ब्रह्म निर्धार ॥
जीव ब्रह्म निर्धार भेद परिछेद शून्य अज ।
निर्विभाग निर्द्वंद्व न जामें सत्त्व तमो रज ॥
कह गिरिधर कविराय रहित उपहित उपाधि ।
परम प्रेमका विषय कह्यो साखीकर आधि ३४०॥
द्रष्टा दृश्य न होत है, दृश्य न द्रष्टा होय ।

द्रष्टाने जब आपको, दृश्य रूप कर जोय ॥
दृश्य रूप करजोय इसीते भयो कुचैनी।
निजते न्यारा मान्यो शैवी शाकत जैनी ॥
कह गिरिधर कविराय सहै नानाविध कष्टा।
भ्रांति कूपके माहिं पड्यो जिस दिनमें द्रष्टा॥२४१॥
शिक्षा१व्याकरण२छन्द३, ज्योतिष४ कल्प५निरुक्त।
६ ।षट अँग हैं यह वेदके, यामें नाना युक्त ॥
यामें नाना युक्त विना सद्गुरु नाहिं पावै।
ब्रह्म श्रोत्रियनेष्ठी जो गुरु मिले तो आवै ॥
कह गिरिधर कविराय तजे जब मनसों विक्षा।
तब होय यथारथ ज्ञान यही संतनकी शिक्षा२४२॥
यही असीकर ज्ञानकी, करी अविद्या घात।
लोक ईषणा वासना, भई दीनता पात ॥
भई दीनता पात सहित देह दृश्य असाता।
जाति पांति सब गई जगत्को टूट्यो नाता ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांति तिसके कब रही।

ब्रह्म विद्या तेग हाथमें जिसने गही ॥ ३४३ ॥
लीला तेरी देव जू, दृश्य नाम अरु रूप ।
इन्द्रजालवत् जगत् है, आप अद्वितीय स्वरूप ॥
आप अद्वितीय स्वरूप शुद्ध पूरण अविनाशी ।
अजर अमर अखण्ड निरामय स्वतः प्रकाशी ॥
कह गिरिधर कविराय रिजकको रच्यो हरीला ।
करी बहाने मौत देव सब तेरी लीला ॥३४४॥
खिलारी तेरे खेलका, किने न पायो अन्त ।
परिछेद तीन ते शून्य तू, या कारणै अनन्त ॥
या कारणै अनन्त सन्त ऋषि मुनी बतावत ।
चतुर षट दश अष्ट पञ्चमो वेद अनावत ॥
कह गिरिधर कविराय लोकहूँ भयो खिलारी ।
कहूँ श्वपच कहूँविप्र कहूँनय देव खिलारी॥ ३४५ ॥
जाके अन्तःकरणमें, राग द्वेषकी आग ।
तिनको सुखस्वप्ने नहीं, शांति न लहै अभाग ॥
शांति न लहै अभाग और पुनि किसी प्रकारा ।

विना ज्ञान नाहिं मुक्ती वेदका बजै नगारा ॥
कह गिरिधर कविराय धूरि शिर डारो वाके ।
राग द्वेषकी अनलजलित है अंतर जाके॥ २४६॥
मिट गइ मूलाविद्या, भो आनंदको ठाठ ।
जैसी करनी रिन्दकी, तैसो गीता पाठ ॥
तैसो गीता पाठ रहै नित उच्च स्वरसों ।
ब्रह्मसागरमें मग्न भयो बचिये त्रय ज्वरसों ॥
कह गिरिधर कविराय बासन तृष्णा हिटी ।
भो आनँदको ठाट अविद्या मूलामिटी ॥ २४७ ॥
असली वस्तु एक है, अध्यारोपै दोय ।
अपवाद किये फिर एक है, ऐसे समझे जोय ॥
ऐसे समझे जोय सोइ नर कहिये दाना ।
निजस्वरूप व्यतिरेक न जिसको भासे आना ॥
कह गिरिधर कविराय त्यागकर मसले मसली ।
सोई चीज निहारो शीघ्र जोहै असली ॥ २४८॥
बागो फाग्यो द्वैतको, भ्रमको तोरी मेड ।

मुठी निकासी भेदकी, कहां मुक्तिकी जैड ॥
कहां मुक्तिकी जैड अविद्या मुई लुखरिया ।
बाह्य मुख जो बुद्धि सो बिलमें धँसी चुखरिया ॥
कह गिरिधर कविराय किया जिस तज्ञको सागो ।
टूक टूक कर डार दियो तिनभ्रमको बागो २४९॥
भजन कौनको कहत हैं, सुन हो दीनदयाल ।
वेद जासुको कहत हैं सो तो पुरुष अकाल ॥
सो तो पुरुष अकाल काल तुझमें है ऐसे ।
रज्जुखण्डके माहि अरोपित विषधर जैसे ॥
कह गिरिधर कविराय अन्यका तजकै अजन ।
चीन आपको ब्रह्मनया समहै कोउ भजन ॥ २५० ॥
यतीमध्य मैं यती हूँ, ना मैं यती अयती ।
सती मध्य मैं सती हूँ, नामैं सती असती ॥
ना मैं सती असती दती मैं दती अदती ।
मती मध्य मैं मती मती तो नहीं अमती ॥
कह गिरिधर कविराय क्षती मैं क्षती अक्षती ।

वर्णाश्रमकी गम्म न जिसमें सो मैं यती ॥ ३८१ ॥
नार मध्य मैं नार हूँ, ना मैं नार अनार ।
यार मध्य मैं यार हूँ ना मैं यार अयार ॥
ना मैं यार अयार धार मैं धार अधार ।
पार मध्य मैं पार पार तो नहीं अपार ॥
कह गिरिधर कविराय हार मैं हार अहार ।
मुझमें कल्पित सबै नपुंसक नर पुनि नार ॥ ३८२ ॥
करण मध्य मैं करण हूँ, ना मैं करण अकरण ।
भरण मध्य मैं भरण हूँ, ना मैं भरण अभरण ॥
ना मैं भरण अभरण हरण मैं हरण अहरण ।
तरण मध्य मैं तरण तरण तो नाहिं अतरण ॥
कह गिरिधर कविराय मरणमें मरण अमरण ।
मेरी सत्ता विना थोथरे हैं सब करण ॥ ३८३ ॥
अकल मध्य मैं अकल हूँ, ना मैं अकल अनकल ।
सकल मध्य मैं सकल हूँ, ना मैं सकल असकल ॥
ना मैं सकल असकल जिस्म जिस्में अजिस्म ।

इल्म मध्य मैं इल्म इल्म तो नाहिं अनिल्म ॥
कह गिरिधर कविराय नकलमें नकल अनकल ।
मेरे सम्मुख भई गुम्म, होजावे अकल ॥ ३६४ ॥
वाक मध्य मैं वाक हूँ, ना मैं वाक अवाक ।
नाक मध्य मैं नाक हूँ नामैं नाक अनाक ॥
ना मैं नाक अनाक चाक मैं चाक अचाक ।
पाक मध्य मैं पाक पाक तो नहीं अपाक ॥
कह गिरिधर कविराय ताक मैं ताक अताक ।
मेरे आगे सब खमोश होजावे वाक ॥ ३६५ ॥
कूप मध्य मैं कूप हूँ, ना मैं कूप अकूप ।
यूप मध्य मैं यूप हूँ, ना मैं यूप अयूप ॥
ना मैं यूप अयूप यूप मैं भूप अभूप ।
रूप मध्य मैं रूप रूप तो नाहिं अरूप ॥
कह गिरिधर कविराय धूपमें धूप अधूप ।
जामें परयो न निकसियो कोऊ सोमैं कूप ३६६॥
ताप मध्य मैं ताप हूँ, ना मैं ताप अताप ।

जाप मध्य मैं जाप हूँ, ना मैं जाप अजाप ॥
ना मैं जाप अजाप आपको आप प्रकाशक ।
सूक्षम थूल प्रपञ्च सर्वको इकरस भासक ॥
कह गिरिधर कविराय पाप मैं पाप अपाप ।
जामें जाप सिरात अष्टज्वर जो है ताप॥ ३९७ ॥
लोचन नव पुनि षटभुजा, तीन शीश त्रयचरण ।
रौद्र वर्ण इक कर भसम, सोई शस्त्र मद हरण ॥
सोई शस्त्र मदहरण इह ज्वरका रूप बतायो ।
वह ज्वर अष्ट प्रकार चिकित्सा शास्त्रन गायो ॥
कह गिरिधर कविराय गर्भ कर डारे मोचन ।
जिसतनमें करै प्रवेशएकघटिकानवमोचन॥३९८॥
मालिक अपना आप तू, तुझे न मालिक अन्य ।
समझेगा जिस वक्त यह, तब होवे धन धन्य ॥
तब होवे धन्य धन्य लोक या पुनि परलोकमें ।
संसार सिन्धुको तरे न डूबे कूप शोकमें ॥
कह गिरिधर कविराय खलिकका जो है खालिक ।

सो परमेश्वर तूहि पिंड ब्रह्मांडको मालिक ॥३५९॥
तेरो ईश्वर तूहि है, और न दूसर सीव ।
महत्व भूलकर आपनो, भयोतुच्छ तू जीव ॥
भयो तुच्छ तू जीव न कारज कोउ सँवारचो ।
अपनो हत्थी आप अपना कर्य बिगारचो ॥
कह गिरिधर कविराय आपको आपै हेरो ।
आधिव्याधि उपाधि सकल मिटजावे तेरो ॥३६०॥
एक वस्तुको दो कहैं, दोमें एक निहार ।
यही भ्रान्त कर पुरुष यह, उरझे मध संसार ॥
उरझे मध संसार न समझत है इक तनका ।
दुख समुद्रमें बहै लहै नाहिं सुखको कनका ॥
कह गिरिधर कविराय बडो सो है अविवेक ।
एक वस्तुको दो कहै पुनि दोको कह एक॥३६१॥
क्षणमें होवे रुष्ट जो, दूसर क्षणमें तुष्ट ।
रुष्ट तुष्ट क्षण क्षण विषे, ऐसा नर जो दुष्ट ॥
ऐसा नर जो दुष्ट मलिन विषयनको किंकर ।

रहित व्यवस्था चित्तखुशी तिलकी अतिभयंकर ॥
कह गिरिधर कविराय इह लक्षण पइये जिनमें ।
वाका संग मत करो कोप होवे जो क्षणमें ॥ ३६२॥
हरी पापको हरत हैं, सुमरे दुष्ट जो चित्त ।
विन इच्छा स्पर्श ज्यों, दहै सुवह्नी नित्त ॥
दहै सुवह्नी नित्त तथा जो भोजन खावे ।
क्षुधा हरनकी चाह नहीं पुनि तऊ अघावे ॥
कह गिरिधर कविराय बात अब सुनले खरी ।
जिसके नाम लिये अघ भाजत सो तू हरी ॥ ३६३॥
जूतो लेकर गंगमें, धोवे बार हजार ।
शुद्ध न होवे किसी विध, करे अनेक अचार ॥
करे अनेक अचार खूह खण बने अचारी ।
केदार खण्डमें बसे अहिंसक नहिं मार्जारी ॥
कह गिरिधर कविराय चतुर धाम फिरपूजनकूतो ।
त्यों देह न होवे विमल चर्मको जैसे जूतो ॥ ३६४॥
पाक पलीत न होत है, पलीत न होवे पाक ।

केर आंब नहिं बनत है, आंब बने नहिं आक ॥
आंब बने नहिं आक यथारथ सुनले भय्या ।
धेनु न कहिये शुनी शुनी पुनि नाहिं न गय्या ॥
कह गिरिधर कविराय सप्त धातुकी देह यह थाक ।
सर्व प्रकार अशुद्ध आत्मा है इक पाक ॥ ३६८ ॥
छोटे परमेश्वर विषे, सिफताँ रहैं अनेक ।
निजानन्दके बोध बिनु, भासित नाहिं न एक ॥
भासित नाहिं न एक बडो है तो यह घाटा ।
सूधो मार्ग छोड पकड्यो कुत्सित बाटा ॥
कह गिरिधर कविराय यह लक्षण पइये खोटे ।
ईश्वर जीव अभिन्न ज्ञान बिन बनरहे छोटे॥ ३६६॥
नारी नवको फील रच, नव नारीकी सुखपाल ।
मोर मुकुटको पहिरके, भये आरूढ गोपाल ॥
भये आरूढ गोपाल ब्रह्म जो करण अगोचर ।
सो लीला विग्रह धार हुये चक्षु इंद्रियगोचर ॥
कह गिरिधर कविराय ओढकर कमरी कारी ।

वंशी शब्द सुनाय मोही जिन ब्रजकी नारी२६७॥
हाथी सुखसों नीकस्यो, पूंछ रही कुछ शेष ।
ता निकासबेके लिये, कर है कौन कलेश ॥
कर है कौन कलेश कथन इक शब्द न लागे ।
जान लई जब रज्जु सर्प नहिं कोउ फिर भागे ॥
कह गिरिधर कविराय न तेरो कोई साथी ।
नाम रूप प्रपंच सकल तू नारी हाथी ॥ २६८ ॥
रत्ता तांबा घर विषे, फिरत गढावत देग ।
सूई लई छदामकी, मजदूरी जा तेग ॥
मजदूरी जा तेग जासुकी ऐसी मती ।
अल्प क्रियाको करके चाहैं अर्ध गती ॥
कह गिरिधर कविराय नीर भावै मन छत्ती ।
ऐसो हंडो मांगे देकर तांबा रत्ती ॥ २६९ ॥
यद्यपि नर कोउ अतिकरल, बोल न जाने हरफ ।
दुर्जनका बल ना चले, परमेश्वर जिस तरफ ॥
परमेश्वर जिस तरफ राम तिस एक न छीजे ।

भोजन मध्य मिलाय हलाहल जे कर दीजे ॥
कह गिरिधर कविराय कमी नहिं तिसको तदपि ।
भाग्य शूरको बात न करनी आवे यद्यपि॥ ३७०॥
काचो मन्त्री छोडके, मन्त्री कीजै ऐन ।
जो गुड दीयेही मरे, क्यों जहर दीजिये गैन ॥
क्यों जहर दीजिये गैन होय जिससे बदनामी ।
तहां न पहुचे कामुक जो पद लहै अकामी ॥
कह गिरिधर कविराय न चीतो सुनो न बाँचो ।
आतमविद्या विना और शास्तर सब काचो ३७१॥
भौंडी किस्मतके भये, जोरू मारै जूत ।
मजूर होयकर जे रहे, करै निरादर पूत ॥
करै निरादर पूत जो घरते बाहर जावे ।
सब जन हांसी करै तो आदर कहूँ न पावे ॥
कह गिरिधर कविराय मोलका लौंडा लौंडी ।
वह भी करै मखोल मन्द प्रारब्ध जो भौंडी॥ ३७२॥
ताले वाले जिनाके, दुश्मन तिनके दफे ।

घाटे वाली वस्तु ले, तौभी पावै नफे ॥
तौभी पावै नफे सुनो अब बेनसीबकी ।
करे बात जो भली तो हानी होत जीवकी ॥
कह गिरिधर कवि मादर पिदर बिरादर साले ।
सबही देत जवाब यह बेवकूफके ताले ॥ २७३ ॥
भाग्यहीनको जो मिलै, चिन्तामणि कहुँ ठोर ।
देखतही देखत नहीं, जान लेत कछु और ॥
जान लेत कछु और कांच वा पाथर कंकर ।
तथा किसीको सर्वदा प्राप्त चिद्घन शंकर ॥
कह गिरिधर कविराय हृदयमें करै अनुराग ।
प्रत्यक अपनो आप न चीन्है बड़ो अभाग २७४॥
जानेवाली वस्तु जो, रहै नहीं क्षण एक ।
रहनेवाली जाय नहिं, उठे उपाधि अनेक ॥
उठे उपाधि अनेक उष्ण तिस पवन न लागत ।
विधि चलाय ना सके आदमीकी क्या ताकत ॥
कह गिरिधर कविराय कालने तेई खाने ।

जिनकी आई अजल अर्थ है तेई जाने ॥ ३७८ ॥
पापी छूटे पापते, पुनि पापीसे पाप ।
मुक्त होय युग परस्पर, जपो शिवोहं जाप ॥
जपो शिवोहं जाप अर्थके सहित जोऊ नर ।
सञ्चित कर्म अनेक जन्मके जायें मर ॥
कह गिरिधर कविराय वृत्ति यह जिसने थापी ।
मैं हूँ ब्रह्म अद्वितीय फेर वह रहे न पापी ॥ ३७६ ॥
आँधी आई ज्ञानकी उड गयो सभी वकूफ ।
नाटक काव्य पुराणको, पढनो भयो मकूफ ॥
पढनो भयो मकूफ जगत बहार न भावे ।
दांत पडे जब टूट कौन मुरचंग बजावे ॥
कह गिरिधर कविराय यार पायो जब गाधी ।
दवगर साथा प्रीति यही अक्कलकी आंधी ॥ ३७७ ॥
चितबिचरनकीभूमियां, शब्दादि विषै परि छिन्न ।
तिन तिनमें जो राग है, यह अबोधका चिह्न ॥
यह अबोधका चिह्न बोधका लिंग वैराग्य ।

सो तो उपजै तिसको जो नर है बड़भाग ॥
कह गिरिधर कविराय जो दारा सुत गृह वित्त ।
तिनको पिखे असत्य फेर कहां धाये चित्त ३७८ ॥
मग्नी पाछे हटोरे, कहां गयो जा मग्न ।
आंख मूदकर बावरे, धस्यो जाय बिच अग्न ॥
धस्यो जाय बिच अग्न जन्म जन्मान्तर रोवै ।
कण्टक तरे बिछाय कहोसुख कैसे सोवै ॥
कह गिरिधर कविराय पेलकर माया ठगनी ।
आप आपने माहिं पैठ सुख पावो मगनी ॥ ३७९ ॥
तनक व्यथाके उदयसे, शिथिल होत है गात ।
लौकिक वैदिक चातुरी, एकै बार पलात ॥
एकै बार पलात खबर कछु रहै न गेहू ।
ऐसे तनुसों पामर बिना को करै सनेहू ॥
कह गिरिधर कविराय कलत्र मित्रके जनक ।
कोउ निवार नहिं सकै देहकादुखइकतनक ३८० ॥
दास आपनो आप है, तपस्वी पुरुष महान ।

तन्त्र होयकर आपने, विचरे बीच जहान ॥
विचरे बीच जहान अन्यकी तजकर आशा ।
बन पट्टन गिरि गुहा जहां तहां करै निवासा ॥
कह गिरिधर कविराय सर्वमें भयो निरास ।
आप अपना प्रभु तपोधन आपे दास ॥ ३८१ ॥
यही कदीमी हाल है, मनका सुवरे मीत ।
क्षणमें बर्तै नीतिमें क्षणमें हो विपरीत ॥
क्षणमें हो विपरीत क्षणकमें चहे दुशाला ।
क्षणमें ओढ्यो कंबल चाहे क्षण मृगछाला ॥
कह गिरिधर कविराय क्षणकमें बन है गेही ।
क्षण विरक्त अतीत ख्याल मनकेहैं येही ॥ ३८२ ॥
देखे मनके जहुर जब, यही पुरी दिल बीच ।
देहादिक संहातमें, और न मन सम नीच ॥
और न मन सम नीच पुरुषकोपुनिपुनि फुर है ।
शब्दादिक जो विषय तिन्होंको हरदम धुरहै ॥
कह गिरिधर कविराय और करनी किस लेखे ।

बलग मनको मिथ्या भौतिकदृश्य न देखे ३८३॥
मन मन्दी बात तज, गन्दा तज हंकार ।
ज्ञान धनुष उरमें गहो, करहु ब्रह्म टंकार ॥
करहु ब्रह्म टंकार जरा तू पग धर आगे ।
भ्रम जो पञ्च प्रकार हृदयते तत्क्षण भागे ॥
कह गिरिधर कविराय मूल संसारके खनरे ।
नाश होय संसार द्वैत फिर रहै न मन रे ॥३८४॥
रे मत भोंदू पावरे, छोडे नहीं कुचाल ।
श्रुति स्मृति सब कह थके, तेरा वही हवाल ॥
तेरा वही हवाल बेसुरा बेताला गावे ।
नाम रूप परपंच और निशि वासर धावे ॥
कह गिरिधर कविराय और तू मत कुछ बन रे ।
निज स्वापके माहिं सदा स्थित रहु मनरे ३८५ ॥
रे मन शब्द स्पर्श जो, रूप पुनः रस गन्ध ।
सर्व दुःखका बीज यह, तू नाहिं समझत अंध ॥
तू नहिं समझत अंध सदा इनहींको चाहे ।

अपनी हत्थी आप आपने तनको दाहे ॥
कह गिरिधर कविराय जो प्रत्यक आनँद घन रे ।
तिसहि माहिं रह लीन सुखी तब होवे मन रे३८६॥
रे मन सूधो होय चल, छांड कपटकी रीति ।
छल बल कला विसार सब, करो एकसों प्रीति ॥
करो एकसों प्रीति जो अन्तर व्यापक तेरे ।
देह इन्द्रिय पुनि प्राण सहित जो सबको प्रेरे ॥
कह गिरिधर कविराय आन गनती मति गनरे ।
तज प्रवृत्ति निवृत्ति रहो तुम सूधो मन रे॥३८७॥
रे मन भौतिक वर्गमें, तू महन्त परधान ।
तेरे पाछे हैं सबै, देह बुद्धि इन्द्रिय प्राण ॥
देह बुद्धि इन्द्रिय प्राण इन्होंमें तू है नायक ।
क्रिया तेरे आधीन मानसी वाचिक कायिक ॥
कह गिरिधर कविराय होवे तबहीं घन धन रे ।
जब निर्विकार होरहे सर्वथा इकरस मन रे॥३८८॥
रे मन तासों प्रीति करि, जो सबकोऽधिष्ठान ।

आन ठौर सुख है नहीं, यह निश्चय कर जान ॥
यह निश्चय कर जान श्रुती गुरु सन्त बखाने ।
माधव व्यास वसिष्ठ कहैं तुम एक न जाने ॥
कह गिरिधर कविराय शिवोहं शिवोहं भन रे ।
जो सबकोऽधिष्ठान प्रीति तासों कर मन रे३८९॥
माला मनसों कहत है, सुनो देव जग भूप ।
मुझ फेरे क्या होत है, तू न लखै निज रूप ॥
तू न लखै निज रूप तो करनी है सब थोथी ।
केवल है बकवाद खोलकर पढै जो पोथी ॥
कह गिरिधर कविराय होत मुख तिनका काला ।
जो प्रत्यक ब्रह्माभिन्न ज्ञान बिन फेरत माला ३९०॥
मनुआ मालासों कहत, सुन रे भोंडी वाम ।
जोमैं लखौं स्वरूपको, तुझसो रहा न काम ॥
तुझसो रहा न काम न तुझको कबहूँ फेरूं ।
मलियां मनियां करके मध्य चौरस्ते गेरूं ॥
कह गिरिधर कविराय जब अपना आप पछनुआ ।

तुझसों रहा न काम पुकारे ऐसे मनुआ ॥ ३९१ ॥
मोटा सोंटा चाहिये, हाथ डेढ परमान ।
घोटे भंग भुजंगको, तोडत दन्ता श्वान ॥
तोडत दन्ता श्वान कहूँ दुर्जन मिल जावे ।
दुश्मन दावेगीर ताहिके मस्तक लावे ॥
कह गिरिधर कविराय राखिये सुन्दर सोंटा ।
अपने बलसे हेठ नहीं छोटा नहिं मोटा ॥ ३९२ ॥
देखी तेरी गति सकल, रे मन भोंदू भूत ।
पंडित मुंडित पच रहे, समझत नाहिं कुपूत ॥
समझत नाहिं कुपूत बांध रह्यो भ्रमकी मूठी ।
पुनि भोगेको भोगत पत्तल चाहत जूठी ॥
कह गिरिधर कविराय नपुंसक है तू भेखी ।
मिलो सजाती साथ छोडकर देखा देखी ३९३ ॥
रुजू होत जाकी तरफ, जासु पुरुषका चित्त ।
तिसहीको सब देत है, सुत दारा तन वित्त ॥
सुतदारा तन वित्त तिसी क्षण तन वित्तकर ।

जन मन तिससे हटै फेरकर सकै न तर्पणकर ॥
कह गिरिधर कविराय पढे निजाम न साजे उजू ।
एक बेर खुद विषेभया तिसका मन रुजू॥२९४॥
रे मन ऐसो काम कर, जाते पावे शान्ति ।
राग द्वेषमिट जाय सब, आशा तृष्णा भ्रान्ति ॥
आशा तृष्णा भ्रांति नीचनी है यह पापिन ।
जाके अन्तर बसे तिसीको डस है सांपिन ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञान कर तू उत्पनरे ।
निबड अँधेरो नाशै मूल अविद्या मनरे॥२९५॥
कुरासिया रस झूँठ पऱ्यो, सांचे रसको छोड ।
इन विषयनको भोगते, बीते कल्प करोड ॥
बीते कल्प करोड सांच कहु राम दुहाई ।
जन्म असंख्य बिताय शांति ना तुझको आई ॥
कह गिरिधर कविराय खोदतो फिरे अब घासिया ।
राजा सिंहासन छोड गुलामी करै कुरासिया२९६ ॥
भागे मुल्लां कहूँ तलक, है मसीद तक दौड ।

आगे जागा है नहीं, जाता होवै चौड ॥
जाता होवै चौड तथा परवर्ती जो खल ।
जाति पांति बिन नाहिंन इनके पुनि को बल ॥
कह गिरिधर कविराय विरक्त दोनोंको त्यागै ।
निर्भय विचरे सन्त किसीसे डरै न भागै ३९७॥
आमय बडो प्रमाद है, सर्व दुःखका बीज ।
तिसके आगे भूत जिन, और रोग क्या चीज ॥
और रोग क्या चीज अल्प है जिसकी आयू ।
देह पातके अन्त विषमता रहे न वायू ॥
कह गिरिधर कविराय दैव जब आवे वामै ।
प्रथमै देह अध्यास होय पुनि पाछे आमै ॥ ३९८ ॥
दुर्जन देखै सन्तकों, धारै मनमें रोष ।
और कोई बल ना चले, अन हो तो कल्पै दोष ॥
अनहोतो कल्पै दोष वाक्य बोले सब डिसामिस ।
ज्यों जंबुक चिचियायखाय मतटीठू किसमिस ॥
कह गिरिधर कविराय बहुत समझावै गुरुजन ।

तऊ स्वभाव न तजे पातकी ऐसो दुर्जन॥ ३९९ ॥
ज्ञानी चाहत ज्ञानको, मानी चाहत मान।
गुजरानी गुजरानमें, होय रहे गलतान॥
होय रहे गलतान तीन यह भारी सरिता।
आतम वेते दूसरा नाहिं कोइ तरता॥
कह गिरिधर कविराय जिते नर हैं अज्ञानी।
कोउचाहतगुजरान मान कोउ होरहो ज्ञानी४००॥
पोसत पीवे वारुणी, खात अफीम मजून।
गटके गञ्जा चरस जो, सो वैराग्य ते शून॥
सो वैराग्य ते शून अन्यथा हैं अभिसन्धी।
अहो पोहसे रहित बुद्धि तिनकी भइ अन्धी॥
कहगिरिधर कविराय न दूजे तिनका दोसत।
भंग तमाखूखात वारुणी पियत जो पोसत४०१॥
श्वान स्यार अहि तिहका, जिसमें रहै खवास।
मिलेन जिसदिन बखत शिर, पांचों उडै हवास॥
पांचों उडै हवास बढै नख शिखु जरदाई।

सब बाई पच जाय कजा की रहै न राई ॥
कह गिरिधर कविराय दरिद्री होवे ज्वान ।
यह अफीममें सिफता वृत्ती करै ज्यों श्वान॥४०२॥
जेते गुणविजया विषे, कहि न सकै कोउ लोग ।
एक दोष कछु कहत हौं, सो है सुनवे योग ॥
सो है सुनवे योग भंग जब पीवे भंगी ।
चढे जो ताको अमल बुद्धि होवे बहुरंगी ॥
कह गिरिधर कविराय सुदाई होवत केते ।
को कवि करै बखान जहुर विजयामें जेते ४०३ ॥
हुक्कासे हुरमत गई, नियम धर्म गयो छूट ।
दाम खर्च कर लियो तमाकू, गई हियेकी फूट ॥
गई हियेकी फूट आगको घर घर डोले ।
जिस घर आगको जाय सोई कुसराती बोले ॥
कह गिरिधर कविराय लगै जब यमको रुक्का ।
प्राण जायँगे छूट सहाय होवै नहिं हुक्का ॥ ४०४ ॥
लूचा चिसनू आखिये, जिसके मनमें लोच ।

लोचनाम है चाहका, चाह बनत नर पोच ॥
चाह बनत नर पोच पोचका अर्थ है अधम ।
ख्वाहिश रहित जो पुरुष देव तिस वन्दे कदम ॥
कह गिरिधर कविराय ज्ञानी ऊंचा सूचा ।
अज्ञानी देह अभिमानी कामी पामर लूचा४०५ ॥
राम बढाये सो बढै, कर बढ्यो न कोय ।
बल छल करके जो बढे, सो प्रभु दीन्हें खोय ॥
सो प्रभु दीन्हें खोय खर दूषण ताडका बाली ।
सह कुटुम्ब कियो नाश जो रावण बडो कुचाली ॥
कह गिरिधर कविराय त्याग कर लौकिकाम ।
हरदम आठों याम जपोह सीता राम ॥ ४०६ ॥
राम एकठो करत है, सर्व जनोंके काम ।
तिसको तजकर मूढ जन, जपैं औरको नाम ॥
जपैं औरको नाम तिनोंकी है कमबख्ती ।
वस्तु छोड कुवस्तु गहैं यह तो बदबख्ती ॥
कह गिरिधर कविराय न तिनको होत अराम ।

प्रत्यक ब्रह्म पृथक् कर जान्यो जिसने राम ४०७ ॥
वैरी तेरो औ नाहिं, वैरी एक बदफैल ।
तू कुबुद्धिको छोडके, दशो दिशा कर सैल ॥
दशो दिशा कर सैल तुझे फिर कोय न रोके ।
ऐसो को संसार माहिं जो तुझको टोके ॥
कह गिरिधर कविराय आप जब बनै न गैरी ।
सर्व जगत् हो मित्र कोउ फिरि रहै न वैरी ४०८ ॥
मरजी चेतनकी जबै, झख मारनकी होय ।
मृग तृष्णाके नीरमें, बहि चाल्यो विन तोय ॥
बहि चाल्यो विन तोय न कहूँ किनारो पावे ।
कभी ऊर्ध्व कभी अधः पुनः पुन गोते खावे ॥
कह गिरिधर कविराय दीजिये किसढिगअरजी ।
परमेश्वरकी भई आप जब ऐसी मरजी ॥ ४०९ ॥
गोते खायनको लग्यो, परमेश्वर जब आप ।
कही न माने वेदको, करे अनेक प्रलाप ॥
करे अनेक प्रलाप तात यह हमरी माता ।

यह हमरी है नारि ये हमरे हैं लघु भ्राता ॥
कह गिरिधर कविराय पुत्र ये हमरे पोते ।
चिन्तासागरबीच परयोनित खावै गोते ॥ ४१० ॥
धक्के खावनकी भई, चिद्घनको जब चाहि ।
जान बूझके आपही, लाग्यो करन गुनाहि ॥
लाग्यो करन गुनाहि न देखै कछु मदमत्ता ।
आदर कोउ ना करै लोक सब कहै कुपत्ता ॥
कह गिरिधर कविराय विषय शब्दादिक तक्के ।
या प्रकार परमेश्वर खावन लाग्यो धक्के ॥ ४११ ॥
मौज होय चिद्देवकी, शब्दादिक किये जाय ।
विन इच्छा परयत्न विन, पावन लग्यो सजाय ॥
पावन लग्यो सजाय रुवाय विना यह रोवै ।
ज्यों कोउ तरे बिछाय गोखरू ऊपर सोवै ॥
कह गिरिधर कविराय आसुरी राखी फौज ।
दैवी संपति दूर करी चिद्घनकी मौज ॥ ४१२ ॥
रोगी चेतन हो रह्यो, ग्रस्यो बहम आजार ।

कभी स्वर्ग पुनि नरककी, लाग्यो खान पजार ॥
लाग्यो खान पजार रैन दिन राखै किस्सह ।
हम अमुके तू अमुक ईसमै मेरो हिस्सह ॥
कह गिरिधर कविराय बुद्धि भइ नख शिख सोगी ।
विना पित्त कफ वाय भयो परमेश्वर रोगी ॥४१३ ॥

हत्या आतमको लगी, नाम रूप अभिमान ।
तब हत्या यह ऊतरै, होय यथारथ ज्ञान ॥
होय यथारथ ज्ञान रहै नहिं ऐंचा तानी ।
देख औरकी क्रिया न उपजे रंच गलानी ॥
कह गिरिधर कविराय भूलकर अपनी सत्या ।
हन्ता ममता त्वन्त लगी परमेश्वर हत्या ॥४१४ ॥

खराब होनको उठ्यो जब, चिद्घनकाहितरंग ।
चरस तमाखू पोसता, पीवन लाग्यो भंग ॥
पीवन लाग्यो भंग अशुधको शुध कर थाप्यो ।
अविद्याको तब नाम खोजकर विद्या राख्यो ॥
कह गिरिधर कविराय मांस खा अँचै शराब ।

इन्हीं लक्षणों आप भया परमेश्वर खराब॥४१५॥
तुफान जु देखनकी जगी, चेतनको अभिलाष ।
परमारथकी तरफते, मूँद लई निज आंख ॥
मूँद लई निज आंख तभी होयो आवरण ।
बहुरों भयो विक्षेप लग्यो फिर जन्म अरु मरण ॥
कह गिरिधर कविराय चल्यो अविवेक जुमान ।
स्वस्वरूप नहिं देखै बकने लग्यो तुफान ॥४१६॥
पाप परमेश्वरको लायो, कल्पित देह अध्यास ।
अहं ब्राह्मण अहं क्षत्रिय, बकै न करे कयास ॥
बकै न करे कयास ज्ञान है और प्रकारा ।
करहै और प्रकार रोग यह अतिही भारा ॥
कह गिरिधर कविराय पिखे जब अपनो आप ।
मूल अविद्या सहित नष्ट हो पुण्य रु पाप॥४१७ ॥
झगरा तैंने दाइया, तूही इसे निबेर ।
दूसरसों निबरे नहीं, यही अटपटो फेर ॥
यही अटपटो फेर आप सुरझाये सुरझे ।

और लगावै हाथ तो उलझो दुगनो उलझे ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिका पटको पगरा ।
अहं ब्रह्म जब लहै तभी यह चूकै झगरा॥४१८॥
हिन्दु अस्ति भाति प्रेम, तुरुक हस्ति इल्म सरूर ।
बहु बरहक ब्रह्मरूप बहु, स्वप्रकाश खुदनूर ॥
स्वप्रकाश खुद नूर कहत है जाके ताईं ।
ला जबान अवाक्य अरूप बेगुना अलाईं ॥
कह गिरिधर कविराय सोई तू आनँद सिन्धु ।
जाका सुमरन करत सर्वदा तुरुक अरु हीन्दु४१९॥
तबही मिहर खुदायकी, जब करै फकीर दवाय ।
कदम पवे दरवशका, होवै रद्द बलाय ॥
होवै रद्द बलाय न होवत कोऊ हरकत ।
मद्दत जिसकी फक्र तिसी घर मांहि बरकत ॥
कह गिरिधर कवि करै जमालबेकैदोंका जबही ।
होवै खुशीकमाल फोत दिलगीरी तबही४२०॥
अल्ला शाह राग ते नजीक, जाका सभी जहूर ।

बातन जाहिर यक अलिफ, हस्ती इल्म सरूर ॥
हस्ती इल्म सरूर नूर हर वखत हैं हाजर ।
परवर दिगार खुदावन्द बरहक यह कादर ॥
कह गिरिधर कविराय मार तिनकी शिर खल्ला ।
जो खुद वखुद विनादिगर औरकोमानतअल्ला ४२१ ॥
आवैतो अटकाव ना, जावै तो नहिं रोंक ।
इस लौकिक व्यवहारमें, हर्ष शोक नाहिं टोंक ॥
हर्ष शोक नहिं टोंक नहीं ख्वाहिश इक माशा ।
फकीरी करनी लगी जबै फिर किसकी आशा ॥
कह गिरिधर कविराय कोइ रोवै कोइ गावै ।
नहीं किसीसे काम भावै जावै मत आवै ॥४२२ ॥
हिन्दी माहिं फकीरको, अक्षर लागें तीन ।
चार हरफ पुनि फारसी, जानत हैं परवीन ॥
जानत हैं परवीन जो हरफोंका है अर्थ ।
विना अर्थके जाने अहमक रहै अनर्थ ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या जिसने निन्दी ।

सोई मुरशद फकर फारसी पढो वा हिन्दी ॥४२३॥
राख्यो नाम फकीर तैं मूल न आई साज ।
जो बजाय नहिं जानता, क्यों ले बांधै साज ॥
क्यों ले बांधै साज बडी अक्कलके मालिक ।
फारखती जब लई जतगसों फिर क्या तालिक ॥
कह गिरिधर कविराय जिन्होंने खुदरस चाख्यो ।
सोई फकर कमाल इसमातिन सांचा राख्यो ४२४॥
फारग जबलग न होवे, फकीरी तबलक दूर ।
ख्वाहिश दुनियांकी करै, फकीर नहीं मजदूर ॥
फकीर नहीं मजदूर पखंडी है वह कसबी ।
भावे राखे माला अथवा फेरे तसबी ॥
कह गिरिधर कविराय जान तिसको अतिबारक ।
फकर कहा कर नामजगत्सों भयो नफारग ४२५॥
तृष्णानै सब ग्रस लिये, बच्यो एक वा आध ।
विषय वासनासे रहित, जगमैं विरलो साध ॥
जगमैं विरलो साध नहीं जिसकै घट लिप्सा ।

शब्दादिक वाको भासे निश्चय करकै रिपुसा ॥
कह गिरिधर कविराय नागनी है यह कृष्णा ।
जिसके अन्दर बसै तिसीको डस है तृष्णा ४२६॥
चल चल चितमें लगरही, बिन धीरज सन्तोष ।
चित्त एकागर ते बिना, क्योंकर पावे मोक्ष ॥
क्योंकर पावे मोक्ष बुद्धि बाह्य मुख धावे ।
बोध यथारथ भये फेर वृत्ति कहूँ न जावे ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या जोहै दल दल ।
तिससेनिकसेपुरुषमिटेसबकल कलचलचल ४२७॥
प्रेम वाक्य परदानते, तुष्ट होय सब जंत ।
ताते प्रेम वक्तव्य है, क्या वचन दरिद्री सन्त ॥
क्या वचन दरिद्री सन्त न जिसमें कौडी लागत ।
बेशुमार हो लाभ फेर क्यों तिससे भागत ॥
कह गिरिधर कविराय जो प्राणी चाहै श्रेय ।
कटु विपर्यय वक्र वाक्य तज बोले प्रेय ॥४२८॥
साँई लोक पुकार दे, रे मन होय फकीर ।

शहर मजहब हद हिरसकी, पगसों मेट लकीर ॥
पगसों मेट लकीर किसीसों कर नहिं दावा ।
सब तुझको करैं सलाम जानकर आदम बावा ॥
कह गिरिधर कविराय गैर कमकर है कांई ।
छोडै दिगर दलील तुही किबला हैसांईं ॥४२९॥
सांई लोक पुकार दे, हो मन रे बनिवा ।
ला शहर बे मजहबकी, पहिरो कुलह कबा ॥
पहिरो कुलह कबा कुफरका परदा फाडो ।
यावत दिगर दलील सकलका मूल उपाडो ॥
कह गिरिधर कविराय जो साहब सभनी थांई ।
मैं हों सोइ खुदाय पढो कलमां यहु सांईं ॥४३० ॥
सांईं लोक पुकार दे, रे मन होय खमोश ।
खुदकी भीतर गुम्म होय, खुदकी रहै न होश ॥
खुदकी रहै न होश तभी तुम होवो कामिल ।
अथवा बस न्यारा रहो वा सबके शामिल ॥
कह गिरिधर कविराय फटकडी लगे न मांईं ।

विन मंजीठ रंगरेज विना दिल रंगो सांई ४३१ ॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन होय मलंग ।
अमल फकीरीका चढे, क्या तिस आगे भंग ॥
क्या तिस आगे भंग वारुणी चरस धतूरा ।
नशे करै सब रद्द फक्कर जब होवै पूरा ॥
कह गिरिधर कविराय किसीको तू न बुलाई ।
तुझे न टोंके कोय विचर निर्भय हो सांई ॥४३२॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन हो बेकैद ।
तीन जिस्मते भिन्नकर, खुदको देख नपैद ॥
खुदको देख नपैद किसीको करो न सिजदा ।
तुझको काफर कहैं जभी तू क्यों है खिजदा ॥
कह गिरिधर कविराय जुगती सब तेरी झांई ।
नहिं तुझतें कुछ जुदा समझले ऐसे सांई ॥४३३॥
सांई लोक पुकार दे, रे मन हो दरवेश ।
काल हालको डालके, खुदमें कर परवेश ॥
खुदमें कर परवेश शरहदा फडो न पल्ला ।

सब दुनियाकी तरफों हटके बन रहो झल्ला ॥
कह गिरिधर कविराय जानले अपने तांई ।
जिसे जानकर और जानना रहै न सांई ॥४३४॥
वासा जन समुदायमें, साधूको जो होत ।
यामें कारण कौन है, कोइ पूर्व पाप उद्योत ॥
पूर्व पाप उद्योत विना ढिग लगै न मण्डी ।
जागे खोटे भाग्य होय तब ऐसी भण्डी ॥
कह गिरिधर कविराय नाश जब होय दुराशा ।
फेरत मनको भावे प्राकृत जनोंमें वासा ॥४३५॥
सोनो जैसो भूमिपर, तैसो ऊपर खाट ।
जैसो रेशम ओढनों, तैसोही पुनि टाट ॥
तैसोही पुनि टाट यथा घृत दुग्ध मलाई ।
तथा सु कोदों चूर्ण निमक विन दाऊ कशाई ॥
कह गिरिधर कविराय काटनो ना कछु बोनो ।
जागेसे नाहिं बांधो घाटो नाहिं कछु सोनो ॥४३६॥
तंगी तनक न सहसके, करै न औरन तंग ।

द्वितिय रंग तहँ ना चढै, जहां असल इक रंग ॥
जहां असल इक रंग रंग सोई है सांचा ।
और जो कृत्रिम रंग सकल तुम जानो कांचा ॥
कह गिरिधर कविराय फकर जो सदा असंगी ।
क्यों उपाधिमें पडै कौन विध देखे तंगी ॥४३७॥
अशन वसन भू कनक पुनि, बाँदा चोपगुलाम ।
हडवाई हथियार बहु, यह नव निधिको नाम ॥
यह नव निधिको नाम चहै जिनको परवर्ती ।
भोजन छादन विना और सब तजै निवर्ती ॥
कह गिरिधर कविराय छोडकर सगरे व्यसन ।
आतम चिन्तन करै संत जन पाकर अशन४३८ ॥
कर्ता सो आयो आपनी, आगई जिसे पसन्द ।
कोई मग्न बिच मजहबदे, कोइ लामजहबमें रिन्द ॥
कोइ लामजहबमें रिन्द किसीको भावै कम्बर ।
इष्ट किसीको चैल किसीको शाल दिगम्बर ॥
कह गिरिधर कविराय अज्ञान जिसनेगहि हता ।

सो आप सर्व समर्थ किसीको धरे न कर्ता॥४३९॥
शहर फकरको चाहिये, तथा भेसको उहिर ।
नहिर बागको चाहिये, तथा कवीको बहिर ॥
तथा कवीको बहिर मधुरता मधुर खोरको ।
द्वीपालको नीती लष्टिका चश्म फोरको ॥
कह गिरिधर कविराय सन्त जन आठों पहिर ।
आतम चिन्तन करै रहै वनमें वा शहिर ॥४४० ॥
मूर्ख लोक ना लख सकैं, संतनके जो फरेब ।
साधु कहावैं औलिये, जेकर चलैं अरेब ॥
जेकर चलैं अरेब तो शोभा होवत दूनी ।
बाजे बे परवाह सन्त जो महा जनूनी ॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी कोऊ पूरुष ।
संत मायाको चीन्है नाहिंन जानत मूरख ४४१ ॥
पशु जो पञ्च प्रकारके, तिनका कर तू त्याग ।
षष्टम सद्गुरु मुक्त जो, तिनके चरणों लाग ॥
तिनके चरणों लाग भागकर इनसों दडबड ।

श्रवण करो महावाक्य छोड प्रवृत्ती अडबड ॥
कह गिरिधर कविराय विभाग न जामैं तसु ।
तामें द्वैत आरोपे बिना विचारे पशु ॥ ४४२ ॥
दरजा जो है फकरका, सो तुम सुनलो यार ।
चार हरफका मायना, दृढकर मनमें धार ॥
दृढकर मनमें धार तभी तुम होवो फकीर ।
गम जो दोनों आलमका सो न करै तगीर ॥
कह गिरिधर कविराय रहै ना शिरपर करजा ।
बेकैदोंका हक्क परस्तोंका जब पावे दरजा॥४४३ ॥
शरिस्ता सुनो फकीरका, तृष्णा करती भंग ।
भिक्षा खानी मांगकै त्याग सर्वका संग ॥
त्याग सर्वका संग सो एका एकी रमैं ।
मन चञ्चलको मार करण श्रोत्रादिक दमैं ॥
कह गिरिधर कविराय मिले कोदों वा पिस्ता ।
हर्ष विवाद न उठै यही फकरनका शरिश्ता४४४ ॥
खफे रहै तो रहन दे, राजी रहे तो हो ।

सो आप सर्व समर्थ किसीको धरे न कर्ता॥४३९॥
शहर फक्करको चाहिये, तथा भेसको लहिर ।
नहिर बागको चाहिये, तथा कवीको बहिर ॥
तथा कवीको बहिर मधुरता मधुर खोरको ।
दीपालको नीती लष्टिका चश्म फोरको ॥
कह गिरिधर कविराय सन्त जन आठों पाहिर ।
आतम चिन्तन करै रहै वनमें वा शहिर ॥४४० ॥
मूर्ख लोक ना लख सकैं, संतनके जो फरेब ।
साधु कहावैं औलिये, जेकर चलैं अरेब ॥
जेकर चलैं अरेब तो शोभा होवत दूनी ।
बाजे बे परवाह सन्त जो महा जनूनी ॥
कह गिरिधर कविराय विवेकी कोऊ पूरुष ।
संत मायाको चीन्हे नाहिन जानत मूरख ४४१ ॥
पशु जो पञ्च प्रकारके, तिनका कर तू त्याग ।
षष्टम सद्गुरु मुक्त जो, तिनके चरणों लाग ॥
तिनके चरणों लाग भागकर इनसों दडबड ।

श्रवण करो महावाक्य छोड प्रवृत्ती अडवड ॥
कह गिरिधर कविराय विभाग न जामैं तसु ।
तामें द्वैत आरोपे बिना विचारे पशु ॥ ४४२ ॥
दरजा जो है फकरका, सो तुम सुनलो यार ।
चार हरफका मायना, दृढकर मनमें धार ॥
दृढकर मनमें धार तभी तुम होवो फकीर ।
गम जो दोनों आलमका सो न करै तगीर ॥
कह गिरिधर कविराय रहै ना शिरपर करजा ।
बेकैदोंका हक्क परस्तोंका जब पावे दरजा॥४४३ ॥
शारिस्ता सुनो फकीरका, तृष्णा करती भंग ।
भिक्षा खानी मांगके त्याग सर्वका संग ॥
त्याग सर्वका संग सो एका एकी रमैं ।
मन चञ्चलको मार करण श्रोत्रादिक दमैं ॥
कह गिरिधर कविराय मिले कोदों वा पिस्ता ।
हर्ष विवाद न उठै यही फकरनका शारिश्ता४४४ ॥
खफै रहै तो रहन दे, राजी रहे तो हो ।

निकस आवेतो निकसनदे, बहाजाय तो बहो ॥
बहाजाय तो बहो मरो वा बहु दिन जीवो ।
सुथरे शाह कि उसकी घोल बताशे पीवो ॥
कह गिरिधर कविराय भ्रांतिको करदे दफै ।
और होवे तो होवो आप मत हूजे खफै ॥ ४४८ ॥
तन्त्र आपनै भयो जब छोड परतन्त्र पाप ।
ब्रह्म चीन यो आपको, जपै कौनको जाप ॥
जपै कौनको जाप करै फिर किसकी सेवा ।
भिन्न आपसे देखै नाहिं कोइ देवी देवा ॥
कह गिरिधर कविराय जपै निशि वासर मन्त्र ।
अहं सच्चिदानन्द अखण्ड आद्वितीयस्वतंत्र॥४४९॥
मोला लोक पुकार दे, रे मन होला चट्ट ।
जो आवै सो खायले, संग्रहकी जड पट्ट ॥
संग्रहकी जड पट्ट भूलकर नाम न लेवो ।
दंभ कामना विन जो दीया जाय सो देवो ॥
कह गिरिधर कविराय फेर ना होवै होला ।

जान लेय तहकीक आपको जबतू मौला॥४४७॥
मौला लोक पुकार दे, रे मन होला शक्क।
जहँ बोले तहँ बोल यह, मन बरहक्क बरहक्क॥
मन बरहक्क बरहक्क कलाम यह पढो हमेशा।
औरनका सँग त्याग करो सोहबत दरवेशा॥
कह गिरिधर कविराय मार तिनके शिर पौला।
खुदसे न्यारा माना जिसने दूजा मौला॥ ४४८॥
अल्ला लोक पुकार दे, रे मन होला वैर।
दिल भावे फिर तहां रहो, जहां जाय तहँ खैर॥
जहां जाय तहँ खैर जुजबांमें होवै शीरी।
इसके तुल्य न करामात ना है कोई पीरी॥
कह गिरिधर कविराय तोड भ्रम गढका हल्ला।
मन खुदाय बेशक पाक मौला मन अल्ला॥४४९॥
अल्ला लोक पुकार दे, रे मन हो बेफिकर।
विना आपने आपसे, छोड दूसरा जिकर॥
छोड दूसरा जिकर समझकर खुदको मालक।

फारग सबते होय किसीते रख ना तालक ॥
कह गिरिधर कविराय फेर कोई फडे न पल्ला ।
जानेगा काशक आपको दब तू अल्ला ॥ ४९० ॥
बैठे खूंटी लोहकी चले तो मूठी पौन ।
कथे तो ब्रह्मज्ञानकी, नहीं तो कर रह मौन ॥
नहीं तो कर रह मौन सन्तकी यह मर्यादा ।
भूँख लगै मँग खाय टूकरा बासी ताजा ॥
कह गिरिधर कविराय विषयसे मगको ऐंठे ।
बाह्य मुखजिन पास जायकर कबौं न बैठे ॥४९१ ॥
गिरानी हो आरामकी, धावे खण्ड केदार ।
इमन इंद्रिय शिथिलहोय सुखको कहँ दीदार ॥
सुखको कह दीदार और कछु बात न बूझे ।
खाना सोना चलना चतुरथ नाहिंन सूझे ॥
कह गिरिधर कवि तुज्ञ देखकर बुद्धि डरानी ।
धावें खण्डकेदार अरामकी होय गिरानी ॥ ४९२ ॥
माइत अपने आपकी, रे मन हो जिस काल ।

निदान सहित भ्रम नष्ट हो, रहै न कोइ जंजाल ॥
रहै न कोइ जंजाल पुरुष निज होय कृतारथ ।
गुरु शास्त्र औ साधन सगरे भये चरितारथ ॥
कह गिरिधर कविराय भली जब आवै साइत ।
तव पुमानको होय यथारथ खुदकी माइत ४८३ ॥
क्षति ना जीवन्मुक्तकी, होवत किसी प्रकार ।
कोऊ प्रतिष्ठा करै पुनि, कोऊ करै तिरस्कार ॥
कोऊ करै तिरस्कार और कोऊ निन्दा करहै ।
कोऊ बैठकर पास बहुतविधि अस्तुति करहै ॥
कह गिरिधर कविराय अविद्या मूला गति ।
अपमान मानके किये कहा ज्ञानीकी क्षति ॥४८४॥
प्रतिष्ठा विष्ठा कूकरी, गौरव रौरव नरक ।
अभिमान वारुणी पान है, त्रितय त्यागे फरक ॥
त्रितय त्यागे फरक निरतिशय सुख तिस प्रापत ।
निःसंशय दीनता नाश हो अस श्रुति गावत ॥
कह गिरिधर कविराय भई तिसकी मति भ्रष्टा ।

गर्व गरूरी करत औ चाहत मान प्रतिष्ठा ॥४५५॥
प्रापतकी प्रापत भई, निःसंशय अपरोष ।
मलिन वासना मिट गई, उपज्यो दृढ सन्तोष ॥
उपज्यो दृढ सन्तोष रही कथनी पुनि करनी ।
ज्ञान कला इक प्रकटी मूला विद्याहरनी ॥
कह गिरिधर कविराय विद्या प्रत्येक समाप्ति ।
वर्णन ग्रन्थनको करै भई प्रापतकी प्राप्ति ॥४५६॥

इति श्रीकविगिरिधरकृत कुंडलिया
द्वितीयभाग समाप्त ॥ २ ॥

अथ शिक्षा ।

दोहा ।

भेद भ्रम कर्तृत्व भ्रम, पुनि भ्रम संगविकार ।
ब्रह्मोत्तर जग सत्य भ्रम, पाचों भ्रम संसार ॥ १ ॥
बिंब प्रति बिंबलोहितस्फटिक, घटाकाशगुणमार ।

कनक कुण्डल दृष्टांत दे, पांचोंभ्रमसुनिवार ॥२॥
अध्यास विपर्यय बाहिमपुनि, भ्रमके अपरपर्याय ।
तत्त्व ज्ञानके पात है, दूसर नाहिं उपाय ॥ ३ ॥
तत्त्वमसि महा वाक्यते, प्रमा अपरोक्ष उदोत ।
अहं ब्रह्म तिस कालमें, नाश विपर्यय होत॥४॥

विद्या अविद्या
रोहिणिके परकाशते, भई कृत्तिका पात ।
अखण्डाकारवृत्ति विषमता
उदय भई जब कृत्तिका, करीं रोहिणीघात॥५॥
आत्मा अनात्मा अध्यास जीव
मेष मेषके मेषसों, हो रह्यो मकर विशेष ।
ज्ञान जीव अद्वितीयका अद्वितीय
मकर भयो जब मकरको, वही मेषको मेष ॥६॥
विवेक वैराग्य मोह
वृषभ वृषभ युग मिले जब, कीनो सिंह निपात ।
बोध मोह
बहुरि वृषभ उत्पतिभयो, तिन हन्योकुलसंघात ७॥

कवित्त-जो कुछ विधाता तेरे लिख्यो है ललाट
पाट, ताहीपर आपनो आप अमल करले।
सोनेको सुमेर भावे देख वार पार मांझ,
घटै बढै नाहिं यह निश्चय जिय धरले॥
देवीदास कहै जोई होनहार सोई ह्वै है।
मनमें विचार रैन दिन अनुसरले
वापी कूप सरिता भरे हैं सात सागर पै,
तू तो तेरे वासन समान पानी भरले॥ १॥
हाँसीसें विषाद बसै विद्यामें विवाद बसै,
कायामें मरन गुरु वतनमें हीनता।
शुचिमें गलानि बसै आपतमें हानि बसै,
जय मांझ हार सुन्दरतामें छबि छीनता॥
रोग बसै भोगमें संयोगमें वियोग बसै,
गुणमें गरब बसै सेवा माहिं दीनता।
और जग रीति जेती गर्भित असाता सेती,
साताकी सहेली है अकेली उदासीनता॥ २॥

अथ सप्तभयानिवारणमन्त्र ।

दोहा ।

यह भय भय परलोक भय, मरण वेदना जात ।
अन्यरक्षा अन्य गुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥
कवित्त-दश जो परिग्रह बियोग चिन्ता यहभय,
दुर्गति गमन परलोक भय मानिये ।
प्राणनको हरण मरण भय कहावे सो,
रोग आदि कष्ट यह वेदना बखानिये ॥
रक्षक हमारे कोऊ नाहीं अन्य रक्षा भय,
चौर भय विचार अन्य गुप्त मन आनिये ।
अचिन्त्य जोई आवही अचानक कहाधो होई,
ऐसो भय अकस्मात जगमें बखानिये ॥ १ ॥

ग्रह भयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ॥

नखशिख पित परमाण ज्ञान अवगाहि निरक्षत ।
जीव ईश भ्रम फोर लक्षणा लक्षित राक्षित ॥
क्षणभंगुर संसार विभू परवार भार अस ।
जेहिउत्पति तेहि प्रलय जास संयोग वियोग तस ॥

परिग्रहप्रपंचप्रगटनिरखयहभयविभयउपजेनाचित ।
ज्ञानीनिशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतानित ॥

परलोकनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

ज्ञान चख्य मम लोक जास अवलोक मोक्षसुख ।
इतर लोक मम नाहिं आहि जिस माहिं दोष दुख ॥
पुण्य सुगति दातार पाप दुर्गति पद दायक ।
मैं चैतन्य स्वरूप उभय गत उभय न लायक ॥
याहि विधिविचारपरलोकभयनहींव्यापतवरतेसुचित ।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

मरणभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

फरस जीभ नक्क नयन और पुनि श्रवण अक्षइति ।
मन वच तन बलतीन श्वास उश्वास आयु थिति ॥
यह दश प्राण विनाश ताहि जग मरण कहीजे ।
ज्ञान प्राण संयुक्त जीव तेहि काल न छीजे ॥
यहचिंतकरतनाहिंमरणभययहप्रमाणमुनिवरकथित ।
ज्ञानी निशंकनिकलंक निज ज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

वेदनाभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

वेदना वारो जीय जाहि वेदान्त सोऊ जीय ।
यह वेदना अभंग सुनो मम संग नाहि विय ॥
कर्म वेदना दुविध एक सुखमें द्वितीय दुख ।
दोऊ मोह विकार पुद्गलाकार बहिर्मुख ॥
जब यह विचारमनमेंधरततब निर्वेदनाभयविदित ।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजजानरूपनिरखंतनित ॥

अन्यरक्षाभयानिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

जो वस्तु सत स्वरूप जगत मय त्रय कालगत ।
तास विनाश न होय सहज निश्चय परवान मित ॥
सो मम आतम वस्तु सर्वदा न सहाय घर ।
तेहि कारण रक्षक नाहिं सुभक्षक नहिं कोऊपर ॥
जबयहिप्रकारानिर्धाराकियोतबअन्यरक्षाभयनशत ।
ज्ञानी निशंकनिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

चौरभयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

परमरूप प्रत्यक्ष जासु लक्षण चिन्मंडित ।
पर प्रवेश तेहि माहिं नाहिं मैं अगम अखंडित ॥

सो मम रूप अनूप अकृत्रिम अमित अटूटधन ।
ताहि चौर किमि गहैं दौर नहिं लहैं और तन ॥
चितवन्तएवधरध्यानजबतबअगुप्तभयउपशमित ।
ज्ञानीनिशंकानिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंत नित ॥

अकस्मात् भयनिवारणमन्त्र ॥ छप्पय ।

शुद्धबुद्ध अविरुद्ध सहजसम ऋद्धि सिद्धिसम ।
अलख अनादिअनंतअतुलअविचलस्वरूपमम ॥
चिद विलास परकाश रहित विकल्प सुथानक ।
जोहिदुविधा नाहिं कोय होय ताहिकछु अचानक ॥
जब वहविवेकउपजंततबअकस्मातभयनाहिंविदित ।
ज्ञानी निशंकानिकलंकनिजज्ञानरूपनिरखंतनित ॥

इति श्रीगिरिधरकृत सप्तभयनिवारणमन्त्र ।

इति गिरिधरकृत कुण्डलिया समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
कल्याण-मुंबई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस,
खेतवाडी-मुंबई.

नीति-ग्रन्थ।

नाम. | की. रु आ.

अफजलुलकानून--अर्थात् (राजपूतानेके फौजदारीका कानून) ... ३-०

अक्षयनीति सुधाकर-(श्रीमहाराजकुमार श्री १०८ अक्षयसिंहजी बनेडा मेवाड प्रणीत) राजाओंको वर्तमान समयमें नीतिसे बर्ताव करना चाहिये इत्यादि राजनीति अपूर्व ग्रन्थ है । इस समयमें राकुमारोंको अवश्य पढने योग्य है. ४-०

उद्योगप्रारब्धविचार-भाग्यके भरोसे रहना या उद्यमकर कीर्ति प्राप्त करना इस विषयमें अनेक श्रुतिस्मृति पुराण-

नाम.	की. रु आ.
न्यायनीतिके दृष्टान्तों सहित सिद्धान्त दर्शायाहै । ...	१॥-०
कामन्दकीय नीतिसार-(महाभारतान्तर्गतविद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रकृत भाषाटीकासमेत । इसमें अच्छे २ नीतिके उपदेश दिखाये हैं । इस संग्राह्य पुस्तकका दाम भी थोडा रक्खाहै.	१।-०
चाणक्यनीति-भाषाटीका दोहासहित ' इसके देखनेसे मनुष्य नीतिकी उत्तम बातें जानसक्ते हैं.	०-८
ठहरो अर्थात् उपदेशदर्पण-इसमे.२००० शिक्षित चुटकुले हैं	०-४

की. रु. आ.

दृष्टान्तमुक्तावली-भाषा–इनमें पितापुत्र, पति पत्नीके परस्पर कर्तव्य, स्त्रीको गुरु करनेका निषेध, सत्यासत्य, क्षमा, दया, नशानिंदा आदि विषयोंके शिक्षाप्रद १४०दृष्टान्त हैं .... –०१२

शुक्रनीति–भाषाटीकासहित । इसमें-राजा राजपत्नी और राजकुमारोंके मुख्य धर्मको रीति और प्रजापालनादि सेनारचना तथा राजप्रबन्ध उत्तम प्रकारका है ग्लेज कागजका ... २–८

भर्तृहरिशतकत्रय–हिन्दी और अङ्गरेजी टीका टिप्पणी सहित–रायबहादुर पण्डित गोपीनाथजी पुरोहित एम. ए. कौन्सिल मेम्बर जयपुर स्टेटकी ब-

नाम.	की. रु. आ.
नाई सुन्दर ग्लेज कागजमें मुद्रित और मनोहर सुवर्णाक्षर युक्त जिल्द बंधी उक्त पण्डितजीकी सरल और गम्भीर भावपूर्ण टीकासे बडा उपकारक होगया है स्कूल और कॉलेजोंके विद्यार्थियोंके बडे कामका पुस्तक है	४–०
वाग्भूषण–चाणक्यनीतिके उपदेशोंका संग्रह	०–३
विदुरनीति और यक्ष–धर्मप्रश्नोत्तरी–भाषाटीकासहित, नीतिशास्त्रका उत्तम ग्रन्थ साक्षात् धर्म, और धर्मराजके प्रश्नोत्तरोंसे अत्यन्त उपयोगी	१–०
स्वर्गका विमान–महात्माओंकी ३२५ अनुभूत शिक्षाओंका संग्रह यथार्थ	

नाम. की. रु. आ.

नाम ग्रन्थ है, इसके ३२५ उपदेशों-
मेंसे एकभी उपदेश यथार्थ आचर-
णमें आजावे तो जीवनको सार्थक
करदे ३-८

अनुभवप्रकाश-(वेदांत) योगेश्वर श्री
१०८ बनानाथजी, कृत मारवाडी
भाषा। इसमें-गुरुकी महिमा, योगकी
प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनको चेता-
वनी, वेदान्तके पद, तत्त्वमस्यादि
वाक्योंका सार, आसावरी, सोरठ,
वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें
वर्णन किया है. ५-०

अभिलाखसागर-भाषामें स्वामी अभि-
लाखदास उदासी कृत। इसमें-वन्द-